आपका व्यक्तित्व जितना प्रभावक था वक्तृत्व भी उतना ही प्रभावक था। आपकी वक्तृत्व शैली सरल, सरस व मर्मस्पर्शी थी, श्रोताओ को चुम्बक के समान आकृष्ट करती थी। आप जीवन के हर पक्ष की इस ढग से व्याख्या करते थे कि श्रोताओ को ऐसा अनुभव होता था कि मानो उन्ही के मन का समाधान किया जा रहा है।

आपके प्रवचनो मे गम्भीर सिद्धान्तो को भी अत्यन्त सरल भाषा व सुगम शैली मे समझाया गया है। प्रत्येक प्रवचन प्रभावकारक, प्रेरणा प्रदायक एव रोचक है तथा अत करण को छूता हुआ चलता है। प्रवचन इतने मधुर, सरस व हृदयस्पर्शी है कि एक बार पढना प्रारम्भ कर देने पर तब तक उन्हे छोडने का मन नही होता है जब तक कि वे पूरे पढ नही लिए जाते है। पढते समय पाठक आनन्द मे निमग्न हो जाते है।

आपके प्रवचनो मे जीवन की दु खद-दशाओ एव उलझी हुई गुत्थियो से मुक्ति पाने का पथ-प्रदर्शन बडी ही सरल युक्तियो से किया गया है। उन युक्तियो का सार प्रवचनो के प्रवाह मे यत्र तत्र-सूत्र रूप मे मिलता है। उन्ही सूत्रो व सूक्तियो का सकलन कर उन्हे प्रस्तुत ग्रन्थ का रूप दिया गया है। इन सूक्तियो मे जीवन के व्यापक अनुभवो का सार, नीति वाक्यो का निचोड, ज्ञान का नवनीत सन्निहित है। ये सूक्तियाँ मार्गदर्शन तो करती ही है साथ ही निराशा और विपत्ति के क्षण मे स्फुरणा, प्रेरणा एव प्रबल बल भी देती है। जीवन की जटिल से जटिल समस्याओ को बात की बात मे सुलझा देने की विशेषता भी इन सूक्तियो मे निहित है। सद्‌ग्रन्थो के सैंकडो पृष्ठो को पढने और सदुपदेशक के घण्टो व्याख्यान श्रवण का जितना प्रभाव पडता है उससे भी अधिक प्रभाव डालने मे समर्थ गुरुदेव की सूक्तियाँ है। इनका प्रभाव सीधा हृदय पर पडता है जो तडित-तरग की भाँति सारे तन व मन को झकृत व प्रफुल्लित कर देती है। ये सूक्तियाँ वे बहुमूल्य मणियाँ हैं, जिन्हे हृदय मे सजोये रखने से अवसर आने पर अमूल्य निधि का काम देती है। ये विकारो के विनाश करने में अमोघ औषधि के समान है। ये सूक्तियाँ वे सीढियाँ है जिन पर चढ कर स्वर्ग व अपवर्ग में पहुँचा जा सकता है। वस्तुत. ये सूक्तियाँ जीवन-व्यवहार मे पग-पग और पल-पल पर पथ-प्रदर्शन का काम देने वाली हैं,

पतन के गर्त में गिरने से बचाने वाली है उन्नति के शिखर पर पहुँचाने वाली है आशा उत्साह व प्रेरणा का संचार करने वाली है।

प्रस्तुत संकलन में सूक्तियों का विषयवार वर्गीकरण किया गया है तथा इन्हें इस प्रकार क्रमबद्ध किया गया है कि पाठकों को प्रवाहमान निबन्ध के पढ़ने जैसी रसानुभूति होती रहे।

प्रस्तुत ग्रन्थ की सूक्तियों का संकलन अभी तक प्रकाशित दिवाकर दिव्य ज्योतियों के बीस भागों से किया गया है। इन सब भागों का प्रकाशन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय ब्यावर से हुआ है। इन प्रवचन पुस्तकों का सम्पादन समाज के मान्य मूर्धन्य विद्वान श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने बड़ा ही सुन्दर किया है। प्रस्तुत संकलन का सम्पादन व वर्गीकरण समाज के उदीयमान लेखक गम्भीर चिन्तक व अनेक विषयों के विद्वान श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा ने किया है। मैंने तो संकलन सेवा ही की है। मुझे आशा है कि जीवन-निर्माण में यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी व बहुमूल्य प्रमाणित होगा। यह संकलन कैसा बन पड़ा है इसका निर्णय तो पाठक स्वयं कर सकेंगे।

कानपुर
जन्माष्टमी

[illegible]
—अशोक मुनि

पुण्य-स्मृति में सहयोग

धर्म-प्रेमी श्रावक श्री शोभाचन्द जी मकाना की पुण्य-स्मृति मे, उनकी धर्मपत्नी धर्मानुरागिनी श्रीमती सायरबाई मकाना की ओर से प्रदत्त अर्थ-सहयोग से प्रकाशित ।

शतशः धन्यवाद !

अनुक्रम

ॐ

दिवाकर-रश्मियाँ

दान

१

किसी वस्तु पर से अपनी ममता हटा कर स्व-पर-कल्याण के लिए उसे अर्पित कर देना दान कहलाता है। दान धर्म की महिमा बड़ी विशाल है।

२

जो पहले बोया उसे अभी खा रहे हो और जो अब बोओगे उसे आगे खाओगे। जो बोएगा ही नहीं वह क्या पाएगा? अतएव दान न देते होओ तो अब देना आरम्भ करो और यदि देते हो तो देते समय अहसान न जतलाओ। यह मत सोचो कि मैं दान देकर दानपात्र पर अहसान कर रहा हूँ। बल्कि यह विचार करो कि यह दान को अंगीकार करने वाला मुझे पुण्य का अवसर दे रहा है। तुम स्वयं उसके प्रति कृतज्ञ बनो। ऐसी भावना करने से तुम्हारे दान का फल कई गुणा [illegible] हो जाएगा।

३

अरे जो सम्पत्ति आज तुझे मिली है वह एक न एक दिन तो जाने वाली ही है। सदा तेरे पास नहीं रहेगी। फिर उसे दान देकर भविष्य में पाने का अधिकारी क्यों नहीं बनता? दारिद्र्य के दुःखों का नाश कर डालने का एक ही तरीका है और वह यही कि तू उदार भाव से प्रेमपूर्वक दान दिये जा!

४.

वर्णमाला मे ५२ अक्षर है। उनमें से एक अक्षर नरक का विरोधी है और दूसरा मोक्ष का विरोधी है। वह दो वर्ण है—"द" और "ल"। दान दो, वस्त्र दो, मकान दो और अभय दो ···· ··यह सब नरक के विरोधी है और "लाओ" "लाओ" मोक्ष का विरोधी है अर्थात् धन लाओ, वस्त्र लाओ, स्त्री लाओ, इस 'लाओ' की लालसा मे मोक्ष का विरोधी होता है।

५.

भाइयो ! यह बात समझने योग्य है कि दान देना उधार देना है और पाप करना कर्ज लेना है। इन दोनो का ही बदला मिलता है। जितना-जितना दान-पुण्य करोगे, उतना-उतना ही पाओगे और जितना-जितना पाप करोगे, उतना-उतना ही चुकाना पड़ेगा।

६.

दान मे ममत्व के त्याग की एव परोपकार की भावना ही मुख्य रूप से होनी चाहिए। कीर्ति की कामना से प्रेरित होकर, वाह-वाह लूटने के लिए, जो दान दिया जाता है, वह दान अशुद्ध हो जाता है। जो अपने दान का अधिक से अधिक विज्ञापन चाहते है, अखबारो मे मोटे-मोटे टाइपो मे अपना नाम छपा देख कर फूले नही समाते। उनका इस प्रकार कीर्ति और प्रतिष्ठा के लिये दिया हुआ दान वैसा फल प्रदान नही करता जैसा कि करना चाहिए।

७.

सच्चा दान देना तो ममता का त्याग करना है। ममता का त्याग कर दिया तो फिर उसका बदला पाने की कामना क्यो करते हो ? अगर कामना करते हो तो तुम्हारा दान अशुद्ध है, वह सच्चा दान नही है। देने पर मिलेगा तो अवश्य ही, मगर पाने की कामना करने से उतना नही मिलेगा जितना कि मिलना चाहिए। अतएव विवेकवान् पुरुष ऐसा विचार नही करते।

रता का लक्षण है। जिसमे यह लक्षण होगा, उसमे धर्म के अन्यान्य लक्षण भी स्वत. आ जाते है। उदारता के साथ क्षमा, निर्लोभता आदि गुण स्वय खिचे चले आते है।

१३.

शास्त्रो का दान देना, निर्ग्रन्थ प्रवचन अथवा दूसरे ग्रन्थो का दान देना, जिससे जनता का अज्ञान दूर हो सके, ज्ञानदान कहलाता है। वहुत-से लोग लड्डू, बताशा, नारियल आदि की प्रभावना करते है; मगर सच्ची प्रभावना जिन-शासन के सम्बन्ध मे फैले हुए अज्ञान को दूर करने मे है।

१४.

दान देकर न पश्चात्ताप करना योग्य है, न अभिमान करना और न ऐहसान समझना ही उचित है। वास्तव मे अभिमान या ऐहसान की वात भी क्या है ? किसान खेत मे वीज वोकर अभिमान क्यो करे, ऐहसान किस पर करे ! उसने अपने ही लाभ के लिए वीज वोया है।

१५

दानी जगत को अपने वश मे कर लेता है। दाता देवता को भी अपनी मुट्ठी मे करके उससे इष्ट कार्य करा लेता है। अतएव दान देना मनुष्य का वडा भारी गुण है।

१६

जैसे वड का छोटा-सा बीज जमीन मे वोया जाता है, किन्तु पानी का सयोग पाकर कालान्तर मे वह हजारो को छाया देने वाला विशाल वृक्ष वन जाता है, उसी प्रकार आहार दान देने से पुण्य का वीज भी विशाल रूप ग्रहण करके फल देता है।

१७

दान देने से आपको किसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पडता हो तो भी मै यही कहूँगा कि आप उस कठिनाई को सहन करके भी दान दीजिए। दान के प्रभाव से आपकी कठिनाइयाँ उसी प्रकार विलीन हो जाएँगी जिस प्रकार प्रवल आँधी के वेग से मेघ की घटाएँ छिन्न-भिन्न हो जाती है। याद रखिए, दान महान् फलदायी होता है।

१८

जो लोग धर्मात्मा को सहायता नहीं देते और पापियों के सामने अपनी थैलियों के मुँह खोल देते हैं वे क्या कर रहे हैं? मानो वे पत्थर की नाव पर बैठे हैं और उनके डूबने में देर नहीं लगेगी। उनका कहीं पता भी नहीं चलेगा।
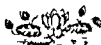
शील

१.

जिस कार्य से शीतलता की प्राप्ति हो, वही शीलव्रत है। जो कुशील को सेवन न करता हुआ सुशीलता को धारण करता है, वह सहज ही आवागमन की परम्परा रूप भवाटवी को उल्लघन करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

२.

किसी प्राणी के साथ द्रोह या वैर-विरोध न करना निवृत्ति है और अनुग्रह करना तथा दान करना प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति और निवृत्ति के मेल से शील का स्वरूप परिपूर्ण होता है। शील रूपी रथ के यह दो चक्र हैं। इन्ही से शीलरथ अग्रसर होकर शीलवान् को अपने लक्ष्य तक पहुँचाता है।

३

जैसे कल्पवृक्ष सभी चिन्तित और अभिलपित पदार्थो का दाता है, उसी प्रकार शील से भी सभी इष्ट पदार्थो की प्राप्ति होती है।

४.

इस ससार मे शील के समान शान्ति और विश्रान्ति देने की शक्ति किसी मे भी नही है। इस लोक मे भी और परलोक मे भी शील से अनन्त शान्ति प्राप्त होती है।

फटक सकते। इस दवा का सेवन करने से निरजन पद की प्राप्ति होती है और अनन्त, अक्षय एव अव्यावाध आनन्द भी प्राप्त होता है।

७.

लोग समझते है कि आग मे वस्तुओ को जला देना यज्ञ है, परन्तु नही, यज्ञ तपश्चर्या का नाम है, जिसमे पापों को जलाकर भस्म किया जाता है और जिससे आत्मा निर्मल हो जाती है।

८.

जिसने मूर्खतावश भग पी ली है, वह उसके नशे से बचना चाहे तो दुनिया मे ऐसी भी चीजें मौजूद है, जिनके सेवन से नशा नही चढता। इसी प्रकार वद्ध कर्मो को निष्फल वनाने के लिए भी भगवान् ने एक उपाय वतलाया है और वह उपाय है—तपश्चरण करना।

९.

कई लोग जप करते है और कहते है—महाराज, हमे जप करते-करते इतने वर्ष हो गये, मगर अभी तक कोई सिद्धि प्राप्त नही हुई। मगर उसे समझना चाहिये कि उसने जप तो किया है मगर जप के साथ तप नही किया। तप के बिना सिद्धि कैसे हो सकती है? दुनिया मे इसीलिये जप तप के साथ लगा है।

१०

ससार मे जितने भी महात्मा हो गये है और जिनकी महिमा का जगत मे विस्तार हुआ है उन सवने तपश्चरण किया था। तपश्चरण के विना आज तक कोई भी पुरुष महात्मा नही वन सका तो परमात्मा वनना तो दूर रहा।

११.

किसी भी महापुरुष का जीवन लीजिए—आपको सव मे एक ही वात मिलेगी। मानो सवकी जीवनी एक ही चक्र पर घूमती है। वह चक्र है तपस्या का। प्रत्येक महापुरुष के जीवन मे तप का ही तेज उद्‌भासित होता है। महापुरुष का परिचय अर्थात् तप की शक्ति का परिचय। तपस्या के प्रताप से महापुरुष का जन्म होता है। तप के प्रताप से ही वह अलौकिक कृत्य करके दिखलाते है।

१२

प्राचीन उदाहरण सैकड़ों की ही नहीं, सहस्रों की संख्या में मौजूद हैं। पर तपस्या के प्रभाव को आज भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। कलकत्ता में और दूसरे स्थानों में गांधीजी ने अपने जीवन में कई बार उपवास किये। उन्होंने भोजन त्याग दिया। उसके प्रभाव से कठोर से कठोर और पाषाण से पापी मनुष्यों के हृदय भी बदल गये। उन्हें भी तपस्या के सामने झुकना पड़ा।

१३

स्वेच्छापूर्वक, पारमार्थिक दृष्टि से कष्टों को सहन कर लेना तप है। तप का बहिष्कार करने का मतलब यह होगा कि जब कोई कष्ट आवे तो उसे स्वेच्छापूर्वक सहन न किया जाय। सहन न करने मात्र से कष्टों का आना तो रुक नहीं जायगा, तप को त्याग देने से सहन करने की शक्ति अवश्य नष्ट हो जायगी। ऐसी स्थिति में जीवन कितना क्लेशमय और दीनतामय हो जायगा यह कल्पना ही बड़ी भयावह है!

१४

भगवान ने उपवास की तपस्या को महत्त्व देने के लिए बाह्य तपों में अनशन तप को सबसे पहले गिना है। गृहस्थों के लिए भी अष्टमी चतुर्दशी और पक्खी के दिन उपवास करने का विधान है। अनशन करने से आत्मा की शुद्धि होती है कर्मों की निर्जरा होती है इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं मन पर काबू प्राप्त किया जा सकता है ज्ञान ध्यान में होने वाले प्रमाद को दूर किया जा सकता है। इन सब लाभों को ध्यान में रखकर भगवान तीर्थंकर ने अनशन तप पर विशेष रूप से बल दिया है।

१५

तपस्या में लौकिक और लोकोत्तर दोनों प्रकार का फल प्रदान करने की प्रबल शक्ति है। लौकिक प्रयोजन के लिए की गई तपस्या लौकिक कार्य को सिद्ध करती है और लोकोत्तर आध्यात्मिक प्रयोजन के लिए की जाने वाली तपस्या से लोकोत्तर प्रयोजन की सिद्धि होती है। परन्तु तपस्या कभी निष्फल नहीं जाती है।

भावना

१.

जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि मिलती है।

२.

भाइयो ! जो चित्त की चपलता का निरोध कर देता है, मन को इधर-उधर नही भटकने देता और जो आत्मा के गुणो मे ही रमण करता है, वह मनुष्य ससार-सागर से पार हो जाता है।

३.

मानसिक विचार ही मनुष्य को डुबोने वाले और उबारने वाले है। अगर आपका विचार शुद्ध होगा तो उच्चार भी शुद्ध होगा और विचार एव उच्चार शुद्ध होगा तो आचार भी शुद्ध होगा।

४.

दान, शील और तप के साथ भावना को जो अन्त मे स्थान दिया गया है, वह इसीलिए कि दान आदि का फल अन्त मे भावना के अनुसार ही प्राप्त होता है। 'यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी' जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। सद्भावना के बिना कोई भी क्रिया पूर्ण फलदायक नही होती।

५.

मन चिन्तामणि रत्न से भी अधिक मूल्यवान् है। क्योकि चिन्तामणि चिन्तित पदार्थ की पूर्ति करती है परन्तु चिन्तन तो मन से ही किया जायगा ! मन न होगा तो किससे इष्ट पदार्थ का चिन्तन करोगे ? चिन्तामणि की उपयोगिता की पहचान कराने वाला भी मन ही है। अतएव मन उससे भी अधिक मूल्यवान् सिद्ध होता है। वह भाग्योदय से आपको सहज ही प्राप्त है फिर भी उसका दुरुपयोग क्यो करते हो ? मन का दुष्प्रणिधान करना चिन्तामणि से कपाल ने की अपेक्षा भी अधिक मूर्खता है।

११.

अगर सचमुच भलाई चाहते हो तो दिल को साफ करो। हृदय को पवित्र भावनाओ के जल मे स्नान कराओ। तुम चाहे कही किसी भी तीर्थ मे जाकर नहालो, गंगा, यमुना या पुष्कर मे गोते मार आओ, किन्तु जब तक दिल साफ नही है तो आत्मा का कल्याण होने वाला नही।

१२.

मन के द्वारा किया हुआ पाप ही पाप कहलाता है। मन के सहयोग के विना केवल शरीर द्वारा किया गया आचरण पाप नही। लोक व्यवहार मे ही देखो। शरीर से जिस प्रकार प्रियतमा का आलिगन किया जाता है, उसी प्रकार पुत्री का भी आलिगन किया जाता है। शारीरिक क्रिया से कोई अन्तर नही होता, किन्तु मन मे अन्तर होता है। यही कारण है कि दोनो की भावना मे अन्तर होने से एक क्रिया लोक मे दूसरी दृष्टि से देखी जाती है और दूसरी क्रिया दूसरी दृष्टि से। दोनो मे कितना अन्तर है? यह अन्तर मनोभावना के कारण ही है।

१३

वैद्य समझता है कि अगर यह वीमार व्यक्ति अन्न खाएगा तो इसका रोग वढ जायगा ऐसा समझ कर वह रोगी को अन्न नही खाने देता। दूसरा आदमी द्वेषभाव से, भूखा रख कर मार डालने के विचार से किसी मनुष्य को अन्न नही खाने देता। मोटे तौर पर दोनो का काम समान मालूम होता है। पर दोनो अन्न खाने से रोकने वालो की भावना मे वडा अन्तर है। एक जीवित रखने की भावना से रोकता है और दूसरा मार डालने की भावना से रोकता है। जवकि दोनो की भावनाएँ विलकुल भिन्न-भिन्न है, एक-दूसरी से एकदम विपरीत है, तो क्या दोनो को समान फल की प्राप्ति होगी? नही, ऐसा कदापि नही हो सकता। प्रकृति के राज्य मे ऐसा अंधेर नही है। जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। मुनिजन कल्याण भावना से प्रेरित होकर, पाप-कर्मो के त्याग का उपदेश देते

१६

भाइयो! याद रखो कभी किसी का अनिष्ट न करो और न सोचो। दूसरो का अनिष्ट करना अपना ही अनिष्ट करना है। दूसरो का अहित सोचने से उनका अहित हो ही जायगा, यह कौन कह सकता है? परन्तु सोचने वाले का अहित होने मे लेश मात्र भी शका नही है। श्री कृष्ण को मारने के लिए कस ने कितने प्रयत्न किये परन्तु कृष्ण जी का वाल भी वॉका न हुआ। जिसे मारने का प्रयत्न किया था, उसी के हाथो से कस मारा गया अतएव कभी किसी का बुरा मत सोचो।

२०.

अशुभ विचार करने से विचार करने वाले का ही अहित होता है। विल्ली के कहने या चाहने से छीका तो टूट नही सकता। किसी के चाहने से कोई दरिद्र या दु खी नही हो सकता। इसके विपरीत दूसरो का बुरा चाहने वाला अपना बुरा स्वय ही कर लेता है।

२१.

आर्त्तध्यान करोगे तो क्या पाओगे? प्रथम, तो दु:ख भोगते समय ही आर्त्तध्यान के कारण वह दु ख अत्यन्त दुस्सह प्रतीत होगा, उसकी उग्रता वढ जायगी। दूसरे, तुम्हारी सहन शक्ति का ह्रास हो जायगा। तीसरे, भविष्य के लिए पुन अशुभ कर्मो का वन्ध होगा। अतएव जव दु ख सहना अनिवार्य हो तो हिम्मत रखो, दृढता रखो, समभाव को मत खोओ।

२२.

जगत के प्रत्येक जीव के साथ पुण्य और पाप लगे हुए है और पुण्य-पाप का मुख्य आधार जीव के परिणाम है। अतएव इस वात का निरन्तर ध्यान रखना चाहिए कि बुरे विचार कभी उत्पन्न न हो सकें।

२३

मनुष्य का जीवन यथार्थ मे उसकी आन्तरिक भावनाओ से ही

२८.

जीव की जैसी मति होती है वैसी ही उसकी गति होती है।

२९.

जिसे अपनी गति सुधारनी है उसे अपनी मति सुधारनी चाहिए और जिसे मति सुधारनी है उसे अपना जीवन सुधारना चाहिए।

३०

असली लाल रंग चढेगा तो वढिया मलमल पर ही चढ़ेगा। उत्तम मलमल केसरिया रग मे डालते ही सुन्दर रंगी हुई दिखने लगती है, उसी प्रकार स्वच्छ हृदय वाले पर धर्म का सुन्दर रग चढता है। जो मलमल के समान प्राणी है उन पर वीतराग देव की वाणी रूप केसरिया रग तत्काल ही चढ जाता है। किन्तु जैसे मलिन वस्त्र पर रग नही चढता उसी प्रकार मलिन चित्त मनुष्य का मन भी धर्म के रग में नही रंगता। वडा मुश्किल हो जाता है उनके चित्त पर धर्म का रग चढना। इस रग मे रंगने के लिए पुण्य की आवश्यकता होती है।

३१.

त्रिफला की फाँकी लेना सुखद नही जान पडता किन्तु जब पेट स्वच्छ हो जाता है और भोजन की रुचि वढ जाती है और तवीयत हल्की महसूस होती है तो कितनी प्रसन्नता होती है! इसी प्रकार अन्त.करण को शुद्ध करने के लिए त्रिफला के समान जव रत्नत्रय का सेवन किया जाता है, तपस्या और सयम की आराधना की जाती हे तव कष्ट होता है किन्तु उस कष्ट को कष्ट न समझकर जो समभाव रखते है उन्हे केवलज्ञान आदि फल की प्राप्ति होने पर कितना आनद मिलता है!

३२.

मन सब पर सवार रहता है, परन्तु मन पर सवार होने वाला कोई विरला ही माई का लाल होता है। मगर धन्य वही है और सुखी भी वही है जो अपने मन पर सवार होता है।

भावना जितनी उच्चकोटि की होगी, मुख-मण्डल का सलोनापन भी उसी उच्चकोटि का होगा।

३८

अपने मन मे जैसे विचार होंगे, वैसे ही दूसरे के विचार हो जाएँगे। अगर आपके हृदय मे जगत् के समस्त जीवो के प्रति मैत्री का भाव उत्पन्न हो गया है और शत्रुता के लिए किसी भी कोने मे जरा भी अवकाश नही रहा है तो समझ लीजिए कि सारा जगत् आपको भी मित्र भाव से देखेगा। आपको किसी से भय खाने की आवश्यकता नहीं है।

३६

भलाई के विचार वडी कठिनाई से आते है, लेकिन बुरे विचार आने मे देर नही लगती। महल बनाने मे वर्ष वीत जाते है, मगर गिराने मे क्या देर लगती है ?

४०

भावना के प्रभाव से केवलज्ञान और मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है। अतएव जो वने सो करो और जो न वन सके उसके लिए भावना रक्खो तो भी आपका कल्याण होगा।

४१

यद्यपि पानी मे कटुकता नही है, नशा उत्पन्न करने का गुण नही है और मारने की शक्ति भी नही है फिर भी अफीम के संसर्ग के कारण उसमे यह सव उत्पन्न करने की शक्ति आ जाती है। इसी प्रकार दान, शील, तप, भावना, व्रत, प्रत्याख्यान आदि स्वभावतः अशुद्ध नही है, किन्तु अशुद्ध श्रद्धा के कारण ससर्ग-दोप मे उनमे अशुद्धता आ जाती है।

४२.

जिसकी धारणा जैसी वन जाती है, वह सभी घटनाओ को और सभी तथ्यो को उसी रूप मे ढाल लेता है। जिसकी आँखो पर जैसे रंग का चश्मा लगा होगा उसे सब वस्तुएँ उसी रंग की दिखाई देने लगेंगी।

अहिंसा

१.

दया धर्म के विना धर्म कैसा ? सब धर्मो का मूल दया है। जहाँ दया नही वहाँ धर्म नही। दया के विकास के लिए ही अन्य सब धर्मो का विधान है।

२.

जैसे आप सुख चाहते है वैसे ही अन्य प्राणी भी सुख चाहते हैं और जैसे आप दुःख से बचना चाहते है, उसी प्रकार अन्य समस्त प्राणी भी दुःख से बचना चाहते है—ऐसा समझकर अन्य प्राणियों के प्रति व्यवहार करो। यही अहिसा धर्म है। यही शाति का मार्ग है।

३.

मन से, वचन से और शरीर से किसी को पीडा मत पहुँचाओ। निश्चित रूप से समझ लो कि दूसरो को पीडा पहुँचाना अपने लिए दुःखो का बीज बोना है और दूसरो का दुःख मिटाना अपना दुःख मिटाना है।

४

अगर स्वय सुखी बनना चाहते हो तो दूसरो को सुखी बनाओ। दुःख से बचना चाहते हो तो दूसरो को दुःख से बचाओ। अपना कल्याण चाहते हो तो दूसरो का कल्याण करो।

५

हे भव्य जीवो ! यदि तुम सुखी रहना चाहते हो तो किसी के सुख मे बाधक मत बनो। यदि तुम अपने लिए दुःख को अनिष्ट समझते हो तो दूसरो को दुःख न पहुँचाओ। जिस प्रकार स्वय जीवित रहना चाहते हो, उसी प्रकार सभी प्राणी जीवित रहना चाहते हैं। कोई मरना नही चाहता। अत. किसी के प्राणों का वियोग मत करो।

है। वह दुनिया मे हिकारत की निगाह से देखा जाता है। उसे लोग घृणास्पद समझते है। क्या तुम ऐसे वनाना चाहते हो ?

११.

मृत्यु को वही जीत सकता है जो मृत्यु से डरता नही है और जो जीवन और मरण को समान भाव से अपनाने के लिए तैयार रहता है। मृत्यु को वही जीत सकता है जो छोटे-वड़े समस्त प्राणियो की अपने निमित्त से होने वाली मृत्यु से वचता रहता है जो स्वय मर कर भी दूसरो को मृत्यु से वचाता है, वही मृत्यु-विजेता वन सकता है। मौत की कल्पना से ही काँपने वाला कव मौत से वच सकता है ? जो अपने प्राणो की रक्षा के लिए दूसरे के प्राण हरण करता है, वह अपनी मौत को न्यौता देकर निकट बुलाता है। उसे एक बार नही, वार-वार मौत का शिकार वनना पडता है।

१२.

किसी को अधिकार नही कि वह तुम्हारे प्राण रूपी परम धन को लूटे, उसी प्रकार तुम्हे भी अधिकार नही कि तुम किसी के प्राणो के ग्राहक वनो। सव इस नीति का अनुसरण करोगे तो सभी सुखी रहोगे। इसके विरुद्ध व्यवहार करोगे तो भूतल कत्लखाना वन जायगा। ससार अशान्ति का घर हो जायगा। हिसा चाहे पेट पालने के लिए की गयी हो, चाहे जिह्वा-लोलुपता के वशीभूत होकर की गयी हो, चाहे धर्म के नाम पर की गयी हो हर हालत मे पाप है और हिस्य तथा हिसक दोनो को अशान्ति और व्यथा देने वाली है।

१३.

भाइयो। पर-प्राणी के प्राणो को अपने ही प्राणो के समान समझो। किसी के प्राण मत लूटो। जीओ और जीने दो। इस सुनहरे सिद्धान्त को यदि ससार स्वीकार कर सके तो जगत् मे अपूर्व शान्ति का सचार हो जाय। फौज, पुलिस, कारागार, न्यायालय और वकील की आवश्यकता ही किसी को न रह जाय।

१४.

जैसे आग से आग शान्त नही होती, उसी प्रकार हिंसा से हिंसा

२१.

आप अपने अन्त.करण मे करुणा का विमल स्रोत वहाओ और श्रद्धा रक्खो कि दूसरे प्राणियो पर की हुई करुणा वस्तुत. अपनी ही करुणा है ऐसा करने से आपका कल्याण होगा, आप गुणी वनेगे। अव-गुणो से वच जायेंगे, प्रभु के समीप पहुँचेगे और भगवान की शरण मे पहुँच कर, अन्त मे स्वय ही भगवान वन जाएँगे।

२२.

जो प्राणी मात्र पर करुणा भाव रखता है वह मनुष्य के रूप मे देवता है। जो मनुष्य, मनुष्य-मात्र पर दया करता है वह मनुष्य है। जो मनुष्य होकर भी मनुष्य पर दया नही रखता उसमे मनुष्यता नही है वह मनुष्य के रूप मे पशु से भी वदतर है। और जो मनुष्य, मनुष्य से घृणा-द्वेप रखता है, उसके विपय मे क्या कहा जाय ?

२३

भाइयो ! जव किसी दु खी को देखो तो उसका दु ख दूर करने की शक्ति भर कोशिश करो अन्यथा वड़े होने का क्या सार निकला ?

२४.

सच्चा अहिसक वीरता दिखलाने के अवसर पर कायरता का आश्रय नही लेता। कायर मे अहिंसा की सच्ची भावना होती ही नही है। वह तो अपनी कायरता को अहिसा के पर्दे मे छिपाने का प्रयास करता है।

२५.

अपनी हथेली पर धधकता हुआ अगार लेकर दूसरे पर फेकने की इच्छा रखने वाला पुरुप मूर्ख है। क्या पता है कि दूसरे पर वह गिरेगा भी या नही ? मगर जो गिराना चाहता है उसकी हथेली तो जले विना रहेगी नही। इसी प्रकार दूसरो का वुरा सोचने वाला भी मूर्ख है। वह दूसरो का वुरा करने से पहले ही अपना वुरा कर लेता है। दूसरे के अपशकुन के लिए अपनी नाक कटवाना वुद्धिमत्ता का काम नही है।

२९.

दया के बिना ससार का त्राण नही है। शान्ति की सैकडों योजनाएँ बनाई जाएँ, मगर वे विफल ही होंगी, अगर उनके मूल में दया नही होगी। क्योंकि शान्ति का मूल आधार दया ही है।

३०.

कीचड को कीचड से धोने का प्रयास मत करो। खून के दाग को खून से धोने का प्रयत्न करना उपहासास्पद है। इसी प्रकार हिंसा-जनित पाप कर्म के फल से वचने के लिए हिंसा को मत अपनाओ। दया-माता की करुणामयी मुद्रा को अपने सामने रख कर ही कुछ करो। दया को विसार कर काम करोगे तो अच्छा करने चलोगे और वुरा फल पाओगे। वकरा और पाडा जैसे पचेन्द्रिय जीवो की हत्या से किसी का कल्याण होना सभव नही है।

३१

अहिंसा के शस्त्र से वैरी का नही, वैर का सहार किया जाता है और जव वैर का सहार हो जाता है तो वैरी मित्र वन जाता है। हिंसा वैरी का नाश करके वैर को वढाती है। यह वैर की अपरिमित परम्परा को जन्म देती है।

३२

जव आप दूसरे का वुरा चाहेगे और वुरा करेगे तो आपका भला कैसे हो सकता है ? अतएव अगर अपना भला चाहते हो तो दूसरो का भला चाहो। हराम का माल खाने की इच्छा मत करो और धर्मादे की सम्पत्ति भी हड़पने की इच्छा न रखो। गरीवो को मत सताओ।

३३

कई लोग अपने दु ख का प्रतीकार करने के लिए हिंसा का आश्रय लेते है। 'यदि मेरा लडका जीवित रह जायगा तो एक पाडा मारूँगा अथवा वकरा चढाऊँगा'—इस प्रकार की मनौती मनाता है। अपने हाथ मे हिंसा करने में ग्लानि होती है तो दूसरे से कह कर करवाता है।

घोपणा है। ऐसी हालत मे हिंसा करके धर्म की कामना करने वाले लोग दया के पात्र नही है।

३७.

मनुष्य भी प्राणी है और पशु-पक्षी भी प्राणी है। मनुष्य की वुद्धि अधिक विकसित है। इस कारण उसे सब प्राणियो का वडा भाई कहा जा सकता है। पशु-पक्षी मनुष्य के छोटे भाई है। क्या मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने कमजोर भाई के गले पर छुरा चलावे? नही, वड़े भाई का काम रक्षण करना है, भक्षण करना नही।

३८

अफसोस है कि जिन क्षत्रियो की वीरता जगत् मे विख्यात थी और जो रणभूमि मे शस्त्रहीन शत्रु पर भी आक्रमण नही करते थे, उन्ही के वंशज आज वकरो और पाडों पर शस्त्र चलाते हुए शर्मिन्दा नही होते और फिर भी अपने क्षत्रिय होने का अभिमान करते है? कितना अध पतन हो गया है? क्षत्रिय वीर अपनी वीरता को विस्मृत कर वैठे है और कायरता के काम करके अपनी वहादुरी जतलाने मे सकोच नही करते।

३९.

अगर मास, मदिरा आदि चीजे अच्छी होती तो मन्दिरो मे क्यो नही चढाई जाती? ये खराव चीजे हैं, इसी कारण तो इन्हे मन्दिरो मे नही जाने दिया जाता। भाइयो! जव यह चीजे मन्दिरो मे भी नही घुस सकती तो इनका सेवन करने वाला वैकुण्ठ मे कैसे घुस सकेगा? थोड़ी देर के लिए वैकुण्ठ की वात जाने दीजिये। यह चीजे इतनी अधिक हानिकारक हैं कि इस शरीर को भी नष्ट कर डालती है। इनका सेवन करने वाले नाना प्रकार की वीमारियो से पीडित होकर दु ख भोगते हुए मरते हैं। भाइयो! यह अभक्ष्य चीजे हैं। छोडने योग्य है।

४०

जो अण्डे खाते हे, कबूतर जैसे सीधे-साधे, भोले प्राणियो का भी माग खा जाते है, वकरे को पेट मे डाल लेते है, मछली को हजम

वात समझाना चाहते है, वे स्वयं संसार मे डूवेगे और उनकी वात मानने वाले भी डूवेगे। दया-माता ही वेडा पार करने वाली है।

४४.

जो लोग मुर्दे को तो कब्र मे दफनाते है और वकरे को मार कर उदर मे दफनाते है, उनका जीवन कभी पवित्र नही वन सकता।

४५.

हाय! मनुष्य जिस पेट को चार रोटियो से भर सकता है, उसी पेट के लिए पचेन्द्रिय जीवो का घात करने मे सकोच नही करता। वह मांस का भक्षण करके जगली जानवरो की कोटि में चला जाता है। अपनी क्षणिक तृप्ति के लिए दूसरे प्राणी के जीवन को लूट लेना कितना भारी अत्याचार है।

४६.

अगर किसी ने चारो वेद पढ लिये है, विविध शास्त्रो को कण्ठस्थ कर लिया है और ऊँचे दर्जे की विद्वत्ता प्राप्त कर ली है, मगर उस ज्ञान को आचरण में परिणत नही किया, जीवो पर दया नही की, तो उसकी विद्वत्ता वृथा है। उसने पुस्तके रट-रट कर माथापच्ची की है, उनसे कोई असली लाभ नही उठाया। ज्ञान का फल दया है और जिसने जीवदया का पालन करके अपनी दया पाली है, वही वास्तव मे पण्डित है।

४७.

संसार मे जितने भी प्राणी है, उन्हे अपनी आत्मा के समान समझो। भेद-भाव मत रखो। कदाचित् कोई वालक अनीति से उत्पन्न हुआ है तो वह अनीति उसके माँ-वाप ने की है। पाप किया है तो माँ-वाप ने किया है उस उत्पन्न होने वाले वच्चे का इसमे क्या दोष है। उसका कोई अपराध नही है। उसे क्यो नष्ट होने देते हो? उसकी रक्षा करो। उसके साथ निर्दयता का व्यवहार मत करो। समभाव रखो।

५२.

जगत् मे भाँति-भाँति के जीव-जन्तु है। उन सब में मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित है। उसे सबसे अधिक समझदार होना चाहिए। अन्य प्राणियों का रक्षक बनना चाहिए। ऐसा करने मे ही मनुष्य की बुद्धिमत्ता और विवेक की विशिष्टता है।

५३.

दूसरो की शान्ति मे ही तुम्हारी शान्ति है। अगर तुम्हारे देशवासी, तुम्हारे पडोसी सुखी होगे तो तुम भी सुखी रह सकोगे। अगर तुम्हारे चारो ओर अशान्ति की ज्वालाएँ भभक रही होगी तो तुम्हे भी शान्ति नसीब नही हो सकती। इस प्रकार अपनी निज की शान्ति के लिए भी दूसरो को शान्ति पहुँचाने की आवश्यकता है। इन बातो को कभी मत भूलना कि दूसरो को अशान्त रखकर कोई शान्ति नही पा सकता।

५४.

स्वार्थ मे अन्धे मत बनो। गरीबो को अधिक गरीब बना कर अपनी अमीरी बढाने के तरीके छोड दो। मत समझो कि हमारा पेट भरा है तो दुनिया का पेट भरा है। उनकी असली स्थिति पर विचार करो। हृदय मे दया की भावना रखो। गरीबो की कुटिया मे जाकर देखो, उन्हे छाती से लगाओ और उनके अभावो को दूर करो। ऐसा करने मे गरीबो का ही नही तुम्हारा भी हित है।

५५

कई लोग कहा करते है कि अगर हम साँप, बिच्छू, शेर, बाघ आदि विषैले और हिंसक जीवो को मार डाले तो क्या हर्ज है ? वे दूसरे जीवो को मारते है, अतएव उन्हे मार देने से हिंसा रुक जायगी। परन्तु यह विचारधारा अत्यन्त भ्रमपूर्ण हे और उल्टी है। ऐसे लोगो से पूछना चाहिए कि दूसरे प्राणियो को मार डालने के कारण अगर सिंह आदि मार डालने योग्य हैं तो सिंहादि को मार डालने के कारण मनुष्य भी मार डालने योग्य क्यो नही साबित हो जायगा ? इस प्रश्न का वे क्या उत्तर देंगे ?

सौभाग्य के अक्षय भडार का मगलमय द्वार खोल देगा। तब आपको मालूम हो जायगा कि यह सौदा घाटे का सौदा नही है।

६०

भाइयो! जो जैसा करेगा, वैसा ही पायेगा। जैसे बीज बोयेगा, वैसे फल चखने को मिलेगे। दया किये बिना कुछ भी मिलने को नही है। अतएव प्राणियो पर दया करना अपने पर दया करना है। अतएव अपनी भलाई के लिए, अपने कल्याण के लिए प्राणियो पर दया करो।

६१

भाइयो! किसी की रोजी पर लात मारना अच्छा नही है। यह बडा घोर और अधम कृत्य है। आजीविका ग्यारहवाँ प्राण गिना जाता है, क्योकि आजीविका के अभाव मे दसो प्राण खतरे मे पड जाते है।

६२

कोई आदमी रग-रूप मे सुन्दर हो, छैल-छबीला हो, पढा-लिखा हो, चलता-पुर्जा हो अगर उसके दिल मे दया नही है तो जानवर का और उसका जन्म बराबर ही है।

६३

जो शराबी को शराब पीने से रोक रहा है वह शराबी का भला चाहता है। ऐसी स्थिति मे वह हिसा के पाप का भागी नही हो सकता। कोई अज्ञान बालक जहर की शीशी उठा कर पीने को उद्यत हुआ है और एक समझदार आदमी उसे पीने से रोक देता है तो वह पाप नही कर रहा है। इसी प्रकार साधुगण झूठ बोलने वाले, चोरी करने वाले और व्यभिचार करने वाले को उपदेश देकर रोकते हैं, तो इसमे हिसा मानना उचित नही है।

६४

दया-माता ही वास्तव मे ससार के समस्त प्राणियो की माता है, क्योकि दया के प्रताप से ही उनकी रक्षा हो रही है, उनका जीवन •• तन बना हुआ है। जन्म देने वाली माता के हृदय मे भी दया

सत्य

१.

ससार मे जो सत्य है, वही आत्मा है। सत्य और आत्मा एक ही है। सत् उसे कहते है जिसका कभी नाश नही होता। अतएव आत्मा सत्य है और सत्य आत्मा है।

२

सत्य के बीज से अन्त करण के प्रदेश मे एक ऐसी प्रचण्ड शक्ति का उदय होता है जिसे पाकर मनुष्य अजेय और अप्रतिहत हो जाता है। सत्य के प्रवल प्रताप से इसी लोक मे परम मगल की प्राप्ति होती है।

३

संसार के सभी धर्म-शास्त्रो मे सत्य को ऊँचा स्थान दिया गया है। भिन्न-भिन्न धर्म और-और बातो में भले ही मतभेद रखते है, किन्तु सत्य के विषय मे किसी का मतभेद नही है। यह सत्य की सबसे बडी महत्ता और विजय है।

४

सत्य के अभाव मे कोई भी धर्म नही टिक सकता। अन्यान्य धर्म अगर वृक्ष, डाली, टहनी और पत्ता है तो सत्य को उन सबका मूल मानना होगा। जैसे मूल के उखड जाने पर वृक्ष धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार सत्य के अभाव मे सभी धर्मो का अभाव हो जाता है।

५

झूठ बोलने वाला एक बार झूठ बोल कर अपना काम बनाने का प्रयत्न तो अवश्य करता है, परन्तु उसके हृदय मे खटका बना रहता है। वह अपने असत्य को छिपाने के लिए जाल रचता है और डरता रहता है कि कही मेरी पोल न खुल जाय? उसे एक झूठ को छिपाने के लिए अनेक झूठ गढने पडते है। उसकी आत्मा गिरती है। वह सदैव बेचैन रहता है, सशंक रहता है और आप ही अपनी नजरो मे गिरा रहता है।

सत्य

१.

ससार मे जो सत्य है, वही आत्मा है। सत्य और आत्मा एक ही है। सत् उसे कहते है जिसका कभी नाश नही होता। अतएव आत्मा सत्य है और सत्य आत्मा है।

२

सत्य के वीज से अन्त करण के प्रदेश मे एक ऐसी प्रचण्ड शक्ति का उदय होता है जिसे पाकर मनुष्य अजेय और अप्रतिहत हो जाता है। सत्य के प्रवल प्रताप से इसी लोक मे परम मगल की प्राप्ति होती है।

३.

ससार के सभी धर्म-शास्त्रो मे सत्य को ऊँचा स्थान दिया गया है। भिन्न-भिन्न धर्म और-और वातो मे भले ही मतभेद रखते है, किन्तु सत्य के विषय मे किसी का मतभेद नही है। यह सत्य की सबसे वडी महत्ता और विजय है।

४.

सत्य के अभाव मे कोई भी धर्म नही टिक सकता। अन्यान्य धर्म अगर वृक्ष, डाली, टहनी और पत्ता है तो सत्य को उन सबका मूल मानना होगा। जैसे मूल के उखड जाने पर वृक्ष धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार सत्य के अभाव मे सभी धर्मो का अभाव हो जाता है।

५

झूठ वोलने वाला एक वार झूठ वोल कर अपना काम वनाने का प्रयत्न तो अवश्य करता है, परन्तु उसके हृदय मे खटका वना रहता है। वह अपने असत्य को छिपाने के लिए जाल रचता है और डरता रहता है कि कही मेरी पोल न खुल जाय ? उसे एक झूठ को छिपाने के लिए अनेक झूठ गढने पडते है। उसकी आत्मा गिरती है। वह सदैव वेचैन रहता है, सशक रहता है और आप ही अपनी नजरो मे गिरा रहता है।

६

असत्य अविश्वास का मूल कारण है। जिसे लोग असत्यवादी समझ लेते हैं उसका विश्वास नही करते। उसकी सच्ची बात भी झूठी समझी जाती है। असत्य खोटी वासनाओ का घर है और समृद्धि म रुकावट डालने वाला है।

७

भाइयो! असत दोषारोपण करना बडा ही भयानक पाप है। जिसको झूठा कलक लगाया जाता है विचार करो कि उसे कितनी मानसिक व्यथा होती होगी? प्राण लेने वाला शत्रु एकदम प्राण ले लेता है परन्तु कलक लगाने वाला जिसे कलक लगाता है उसे आजीवन पीडा पहुँचाता है। यह कोई साधारण पाप नही है।

८

नाम रखने का उद्देश्य किसी के गुणो को प्रकट करना नही है वरन् व्यवहार म पहचान मे सुविधा पैदा करना है। अतएव दुबले पतले थरथराते आदमी के लिए नाहरसिंह नाम के अनुसार शब्द प्रयोग करने से असत्य का दोष नही लगता है क्योकि यह कथन नाम सत्य है।

९

शतरज के मोहरा मे राजा वजीर हाथी ऊट, घोडा और प्यादा की स्थापना कर ली जाती है। उन मोहरो को राजा वजीर आदि शब्दो से कहते हैं। ऐसा कहना दूषित नही है क्योकि वह स्थापना सत्य है।

१०

किसी ने प्रश्न किया—समुद्र कैसा है? उत्तर दिया गया—पानी से भरे हुए कटोरा जैसा। यह कथन उपमा सत्य है।

११

जैसे दो और दो चार होते हैं—यह ध्रुव सत्य था, है और रहेगा उसी प्रकार तीर्थंकरो ने जो मार्ग बतलाया है वह भी ध्रुव सत्य है।

१२

लोगो का यह भ्रम मात्र है कि असत्य का सेवन करने से किसी

प्रकार का लाभ हो सकता है। युधिष्ठिर अपने सत्य पर आरूढ रहे तो क्या महाभारत मे उन्हे विजय प्राप्त नही हुई ? अवश्य हुई।

१३

सत्य सदैव दवा नही रहता। वह एक न एक दिन अवश्य उभरता है। कोई भी मेघ सदा के लिए सूर्य को नही छिपा सकता। घना से घना कोहरा भी आखिर फटता है और सूर्य अपने असली रूप मे चमकने लगता है, सत्य भी ऐसा ही है। वह कभी न कभी प्रकाश मे आये विना नही रहता।

१४

हिंसाकारी वचन सत्य की कोटि मे नही है।

१५

थोड़े समय के लिए भी जिसने असत्य या अब्रह्मचर्य का सेवन किया, उसने अपना जीवन मिट्टी मे मिला लिया। क्या एक बार जहर खाने वाला मरता नही है ? अवश्य मरता है। इसी प्रकार एक वार सत्य का परित्याग करने वाला भी अपना धर्म गँवा देता है।

१६

भाइयो ! सत्य भी वडी भारी चीज है। अगर सम्पूर्ण सत्य का आचरण न कर सको तो जितना कर सकते हो उतना करो। दुनिया मे कहावत है—नहाए जितनी गगा। जितना वन पड़े उतना ही लाभ है। अतएव अगर एकदेश से आशिक रूप से सत्य का आचरण कर सकते हो तो भी करो, मगर करो। अपने जीवन को सत्य से सर्वथा शून्य मत रहने दो। जितनी और जैसी करनी करोगे, उतना और वैसा ही फल पाओगे। जितना गुड डालोगे उतना ही मीठा होगा।

१७.

दुकान को लोग गणेशजी की पेटी या शिवजी की पेढी कहते हैं, लेकिन कर्त्तव्य क्या करते है ? दुकान पर बैठे-बैठे गप्पे मारते है, झूठा नामा लिखते है, गरीबो का गला काटते हैं। भोला-भाला गरीब ले जाता है पाँच और लिख लेते हैं पचास। अरे गपोडशंख ! नाम तो भगवान का रखता है और ऐसी अनीति करता है। तभी तो दुनिया सुखी नही होती। सचाई के विना सुख कैसे मिल सकता है ?

अस्तेय

१

ईश्वर भक्त कभी चोरी नही कर सकता। चोरी छिपे छिप की जाती है। ईश्वर भक्त समझता है कि मैं छिप कर कोई काम नही कर सकता। भगवान सवदर्शी हैं। वे सबको देख रहे है। उनसे मेरी कोई प्रवत्ति छिप ही नही सकती। अजी चोरी करने की बात जाने दीजिये भक्त चोरी करने का सकल्प भी अपने मन मे नही कर सकता। भला जिसके चित्त म ईश्वर का वास है उसके चित्त मे चोरी करने की या और कोई भी पाप करने की भावना ही किस प्रकार उदित हो सकती है? ईश्वर का भक्त सभी पापो से अलिप्त रहता है।

२

अपने कत्तव्य को ईमानदारी के साथ अदा न करने वाला चोर कहलाता है। चाहे वह किसी भी जाति का हो कोई भी धधा करता हो। चोर की कोई जात-पात नहीं होती जो चोरी करे वही चोर है। डाका डाले वही डाकू, रडी के यहाँ जावे वही रडीबाज और जो बुरा काम करता है वही बदमाश कहलाता है। इन सब दुगुणो का सबध किसी जाति से नही होता है। कई लोग ऊँची जाति म उत्पन्न होकर भी चोर और बदमाश हो सकते हैं और कई नीची समझे जाने वाली कौम में जन्म लेकर भी प्रामाणिकता और नीति के साथ अपना निर्वाह करते हैं।

३

न्यायाधीश का कत्तव्य है कि वह छान-बीन करके सच्चा न्याय दे—दूध का दूध पानी का पानी कर दे। इसके विपरीत अगर वह किसी के लिहाज मे आकर किसी के दवाव में पडकर लोभ-लालच मे फँसकर या रिश्वत लेकर अन्याय करता है सच्चे को झूठा और झूठ

को सच्चा ठहराता है तो वह चोर है वह अपने कर्त्तव्य का चोर है, धर्म का चोर है, सरकार का चोर है और प्रजा का चोर है। इसी प्रकार कोई दूसरा कर्मचारी भी अगर अपने वास्तविक कर्त्तव्य से गिरता है तो वह चोरी के अन्धे कुए मे गिरता है।

४.

चोरी करके कमाया हुआ पैसा मोरी मे ही जाने वाला है। उससे आत्मा का भी हनन होता है। चोरी करने वाला व्यापारी अन्त तक अपनी साख कायम नही रख सकता। एक न एक दिन उसकी साख खत्म हो जाती है और व्यापारी की साख उठ जाना एक प्रकार से व्यापार उठ जाना है।

ब्रह्मचर्य

१
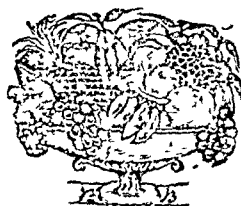
ब्रह्मचय का अय क्वल स्पर्शेन्द्रिय का सयम नही, वरन् समस्त इन्द्रियो का सयम है। इतना ही नही किन्तु समस्त इन्द्रियो का सयमन करके ब्रह्म अर्थात आत्मा मे चर्या करना अर्थात विचरना सच्चा ब्रह्मचय है। ब्रह्मचय की यह पराकाष्ठा प्राप्त करने के लिए स्पशन्द्रिय के सयम से शुरुआत करनी पडती है।

२

आत्मा का आत्मिक गुणो मे ही रमण कराना आत्मा क अतिरिक्त जितन भी पर-पदाथ हैं उनम रमण न करन देना उनकी ओर न जान देना ब्रह्मचय कहलाता है।

३

आत्मा के स्वाभाविक सुख क सामन नारी का सुख उपहासास्पद है और आत्मा क सौन्दय क आग नारी का सौन्दय विद्रूप है।

४

कामभोग विष स अधिक विषम हैं। विष की बात की जाय, विष को हाथ म लिया जाय, आँखो स देखा जाय या विष सम्बन्धी बात कानो स सुनी जाय तो विष हानि नही पहुँचाता, लेकिन कामभोगो का विष इतना तीव्र होता है कि उनकी बात कहन-सुनन से, स्मरण करन और दखन स भी अपना प्रभाव डाल बिना नही रहता। फिर और-और विषो का प्रभाव तो अधिक स अधिक वतमान जीवन को ही प्रभावित करता है मगर भोगो का विष जन्म-जन्मान्तर तक आत्मा को प्रभावित करता है।

५

जब दिव्य कामभोग भी इच्छा की पूर्ति नही कर सकते तो फिर साधारण मानुषिक कामभोग क्या तृप्ति कर सकेंगे ? भोगो की अभि

लाषा भोग भोगने से उसी प्रकार बढती जाती है, जिस प्रकार ईंधन झौकने से आग बढती ही चली जाती है। इन भोगो से अन्त मे दु ख के सिवाय और क्या पल्ले पड़ता है ? तो क्या रखा है इन भोगों मे ? संसार के सभी पौद्गलिक पदार्थ आत्मा के लिए हितकारी नही है। थोड़े दिनो रहकर वे आत्मा को मूढ बना कर दूर हो जाते है।

६

ब्रह्मचर्य के अभाव मे मूलभूत प्राण-शक्ति का ह्रास हो जाता है। तो बाहरी उपचार क्या काम आएँगे ? दीपक मे तेल ही नही होगा तो लाख प्रयत्न करो, वह प्रदीप्त नही होगा। इसी प्रकार शरीर मे वीर्यशक्ति नही है तो कोई भी औषध, रसायन, भस्म आदि काम नही आ सकती। इसके विपरीत यदि आपने अपने वीर्य की रक्षा की है तो आपको स्वत नीरोगता प्राप्त होगी, आपका जीवन आनन्द-दायक होगा।

७

कामवासना आग है। इस आग की विशेषता यह है कि इसमे जल कर भी लोग जलन का अनुभव नही करते, बल्कि शान्ति समझते है। यह आग सबसे पहले प्राणी के विवेक को ही नष्ट करती है और जब उसका विवेक नष्ट हो जाता है, तो फिर उसे हित-अहित का भान ही नही रहता।

८

जिसके हृदय मे कामवासना उद्दीप्त होती है वह पुरुष आँखे रहते भी अन्धा और कान होते हुए भी बहिरा हो जाता है। उसे हिताहित का भान नही रहता।

९.

मनुष्य के मन मे जब दुर्वासना उत्पन्न होती है तो उसे बिगडते जरा भी देरी नही लगती। चित्त का विकार मनुष्य को अधा कर देता है। उचित-अनुचित क्या है, नीति क्या है, अनीति क्या है, इत्यादि विचार ऐसे मनुष्य से दूर ही रहते है। कई राजा दासियो के भी दास बन जाते है और कई रानियाँ अपने दासो की दासियाँ बन जाती हैं। वास्तव मे यह काम-विकार बडा ही अनर्थकारी है।

१०

उल्लू दिन मे नही देखता और कौवा रात्रि म नही देख सकता, किन्तु कामान्ध पुरुष उल्लू और कौवा से भी गया बीता होता है। उसे न रात को दिखाई देता है न दिन को दिखाई देता है। वह रात दिन अधा ही बना रहता है।

११

कामवासना के कारण जिसका विवेक विलुप्त हो जाता है, वह विनय शील, सन्तोष, भद्रता लज्जाशीलता कुलीनता आदि सभी का त्याग कर निर्लज्जता उद्दण्डता आदि बुराइयों का शिकार हो जाता है। अपने पुरखों की कीर्ति को कलकित करने म सकोच नही करता।

१२

जिसने ब्रह्मचर्य की महिमा नही समझी और इस कारण अपने वीर्य का दुरुपयोग किया समझना चाहिए उसने अपने हाथो स अपने सिर कुल्हाड़ा चला लिया। उसने अपने जीवन को भ्रष्ट और नष्ट कर डाला। वह अपना आत्मा का भयानक शत्रु है। अपने देश और समाज का भी वह हानि पहुँचा रहा है। वह निर्वीय पुरुष निकम्मा है। वह जीता है तो भी मृतक के ही समान है।

१३

क्या आप उस मूर्ख मनुष्य को विवेकवान् समझेंगे जो बहुमूल्य इत्र को गटरों में डाल देना चाहता है? मनुष्य-जन्म और ब्रह्मचर्य अनमोल रत्न हैं। उन्हें यों लुटा देना मूर्खता की पराकाष्ठा है।

१४

वीर्य का नाश करना जीवन का नाश करना है और वीर्य की रक्षा करना जीवन की रक्षा करना है।

१५

काम-वासना समस्त दुर्गुणों का प्रतीक है और काम को जीत लेना समस्त विकारों को जीत लेने का चिह्न है। जिसने काम को

जीत लिया, उसने सभी दोषो को जीत लिया समझिए। वास्तव मे काम को जीतना वड़ा ही कठिन कार्य है।

१६

धर्म की आराधना की पहली शर्त विपय-वासना को जीतना है और विपय-वासना मे काम-वासना सबसे जबर्दस्त है। इसे जीते विना चित्त मे निराकुलता नही उत्पन्न हो सकती। अतएव जिसे अपना जीवन सफल वनाना है, अपना भविष्य कल्याण-पूर्ण वनाना है, जिसे शान्ति की कामना है और जो असीम सुख का अभिलापी है, उसे कामवासना पर विजय प्राप्त करनी ही चाहिए।

१७.

नारी घी के घड़े के समान है और पुरुप तपे अगार के समान है। अतएव बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह घृत और आग को एक जगह न रखे।

१८.

जैसे गेहूँ के आटे मे भूरा कोला रखने से उसका बन्ध नही होता अथवा चावलो के पास कच्चा नारियल रख देने से उसमे कीड़े पड जाते है, उसी प्रकार स्त्री और पुरुप अगर एक आसन पर वैठे तो उनका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

१९.

पति-पत्नी के शब्द या हँसी-मजाक की वाते सुनने से मन मे विकार उत्पन्न होने की पूरी सम्भावना रहती है। जैसे मेघ की गर्जना सुनने से मोर बोलने लगता है, उसी प्रकार काम-विकार सम्बन्धी बातें सुनने मे विकार जागृत होता है।

२०.

जो स्त्री आदि के साथ एक मकान मे रहता है अथवा स्त्रियो की चर्चा-वार्ता करता है, उसका ब्रह्मचर्य विगड जाने की पद-पद पर सम्भावना बनी रहती है। जहाँ ऐसी वाते हो, समझना चाहिये कि वहाँ खाली म्यान है, तलवार नही है। पुरुप के लिए स्त्री का ससर्ग

और स्त्री के लिए पुरुष का सामीप्य सिवाय हानि के और कुछ उत्पन्न नहीं कर सकता।

२१

कोई यह कह सकता है कि स्त्रियों के विषय में बातचीत करने में क्या रखा है? बातें करने से कैसे ब्रह्मचर्य बिगड़ जायगा? परन्तु ऐसी बात नहीं है। इमली या नीबू का नाम लेते ही मुंह में पानी भर आता है। इसी प्रकार स्त्रियों सम्बन्धी बातचीत करने से मन ठिकाने नहीं रहता है।

२२

ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के अंगोपांगों का अवलोकन न करे। कोई कह सकता है कि विकार तो चित्त में होता है आँखों में नहीं। फिर स्त्री के अंगोपांगों को अगर देख भी लिया जाय तो क्या हानि है? इस शंका का समाधान यह है कि जैसे सूर्य की तरफ बार-बार देखने से आँखों की शक्ति का नाश होता है, इसी प्रकार स्त्रियों के अंगोपांगों को देखने से ब्रह्मचारी पुरुष के ब्रह्मचर्य का विनाश होता है।

२३

जैसे आग के स्पर्श से पाँच हजार का शाल खाक हो गया, शाल खराब हो गया उसकी कोई कीमत नहीं रही, इसी प्रकार स्त्री के स्पर्श से संयमी भी खराब हो जायेंगे। आपके ब्रह्मचर्य का क्या मूल्य रह जायगा?

२४

जैसे व्यापारी जहाज पर सवार होकर व्यापार के निमित्त समुद्र के परले पार जाता है उसी प्रकार जो ब्रह्मचर्य रूपी जहाज में बैठेगा वह संसार रूपी समुद्र के परले पार जायगा।

२५

कामभोग शल्य के समान हैं। जैसे शरीर के भीतर चुभा हुआ शूल मार्मिक कष्ट पहुँचाता है उसी प्रकार यह कामभोग भी आत्मा को गहरी कष्ट पहुँचाने वाले हैं।

२६.

अगर माता-पिता ब्रह्मचर्य का ध्यान रक्खे तो बचपन मे बालको को प्राय दवा की आवश्यकता ही न रहे। उनको भी जल्दी बुढापा नही आवे। क्योकि वीर्य शरीर का राजा है। जिसका राजा ही बिगड जाय, उसकी प्रजा कब ठीक रह सकती है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के बिगड जाने पर शरीर भी बिगड जाता है। आज ब्रह्मचर्य की ओर पर्याप्त ध्यान नही दिया जाता, इसी कारण नस्ल निर्बल, निस्तेज, रुग्ण और अल्पायुष्क होती है।

२७.

जो लोग बलवर्धक और उन्मादकारी भोजन करते है और कभी तपस्या नही करते, वे अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा नही कर सकते।

२८

ब्रह्मचर्य की साधना का सबध जैसे आँख और कान के साथ है, उसी प्रकार जीभ के साथ भी है। आँखो और कानो पर कितना ही नियत्रण क्यो न रक्खा जाय, अगर जीभ पर नियत्रण न किया तो साधना किसी भी समय मिट्टी मे मिल सकती है। पौष्टिक, मादक और उत्तेजक भोजन करने वाला ब्रह्मचर्य की आराधना नही कर सकता।

२९

ब्रह्मचारी को रूखा-सूखा भोजन भी परिमाण से अधिक नही खाना चाहिए। सेर की हँडिया मे सवा सेर भर दिया जाय तो फूटे बिना नही रहेगी।

३०

यदि किसी का मन सबल नही है तो वह वर्ष मे एक दिन छोड कर ब्रह्मचर्य पाले। यह भी नही बनता तो महीने मे एक दिन अपवाद रख कर ब्रह्मचर्य का पालन करो। अगर इतना भी न हो सके तो कफन सिरहाने रख कर सोओ। शरीर का राजा वीर्य है। अगर राजा बिगड गया या नष्ट हो गया तो प्रजा का पता लगाना ही कठिन

है। शरीर या राजा बिगड जाता है तो फिर जल्दी ही लक्कड इकट्ठे करने पडते हैं।

३१

जो गृहस्थ रूखा-सूखा भोजन करते हैं उनका भी चित्त ठिकाने नही रहता, ऐसी स्थिति मे अगर साधु प्रतिदिन गरिष्ठ माल मसाले खायेगा तो उसकी साधुता ठिकाने लगने म क्या कसर रह जायगी? किसी आदमी को त्रिदोष की बीमारी हो जाय और फिर उसे मिश्री तथा दूध पिला दिया जाय तो वह नीलाम ही बोल जायगा—मर जायगा। इसी प्रकार जो रोज माल खायगा वह ब्रह्मचय से च्युत हो ही जायगा।

३२

जैसे पवन का समुद्र म गिरना सभव नही उसी प्रकार पौष्टिक भोजन करने वालो के लिए इन्द्रियों का निग्रह करना सभव नही। इन्द्रिया को प्रबल बनाने वाला उन्माद उत्पन्न करने वाला, उत्तेजक भोजन विषय वासना की ओर प्रेरित करता है। ऐसा भोजन करके काम विजय करना सभव नही है।

३३

स्त्री अगर ब्रह्मचारी पुरुष के लिए विष के समान है तो ब्रह्मचारिणी स्त्री के लिए पुरुष भी विष के ही समान है। स्त्रियो को पुरुषों के सान्निध्य-ससग मे बचना चाहिए और ब्रह्मचर्य पालने के लिए पुरुषों को जो नियम बतलाये गये है वे स्त्रिया के लिए भी समझना चाहिए। आशय यह है कि पुरुष म भी कम माया नही है। हम तो रुपयो के खरे-खरे गीत गाते हैं। हम घूस लेनी नही है पैसे लेने नही हैं कि किसी की खुशामद करके व्याख्यान दें।

३४

जो मनुष्य ब्रह्मचय का पालन करना चाहता है उसे अपने रहन सहन और खान-पान के प्रति विशेष सावधान रहना चाहिए। जीवन मे उसे सादगी धारण करनी चाहिए। बाल जमाना सुगधित साबुन लगाना इत्र लगाना सुदर वस्त्राभूषण धारण करना और भाँति

भाँति का शृङ्गार करना यह सब कामदेव को निमत्रण देने की ही तैयारी करना है। अतएव अपने मन को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। मन को जीते विना विषय-विकार को जीतना कठिन ही नही अशक्य भी है।

३५

काम रूप विकार स्वाभाविक नही है। वह आत्मा का सहज गुण नही है। पर-पदार्थों के सयोग से ही इस विकार की उत्पत्ति होती है। जो विकार आत्मा की अपनी निर्बलता और भूल से उत्पन्न हुआ है, उसे आत्मा विनष्ट भी कर सकती है।

३६

जो मनुष्य शान्ति का इच्छुक है, कान्तिमान् बनना चाहता है, स्मरण-शक्ति बढाने की अभिलाषा रखता है, बुद्धि की वृद्धि चाहता है, शरीर को रोगो से वचाना चाहता है और उत्तम सन्तान चाहता है उसे ब्रह्मचर्य रूप महान् धर्म का आचरण करना चाहिये।

३७

ब्रह्मचर्य से तन और मन वलवान वनते है। ब्रह्मचर्य से आत्मा निर्मल होती है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से सव प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है। ब्रह्मचर्य वल, विद्या, बुद्धि, प्रतिभा, तेजस्विता, स्वस्थता, दीर्घायु और सुख प्रदान करने वाला है।

३८

ब्रह्मचर्य का पालन करने से अनेक भयकर बीमारियाँ जैसे क्षय, तपेदिक आदि भी दूर हो जाती है और कामासक्ति की अधिकता से अनेक प्राणहारी रोगो का उद्भव होता है। सुजाक, गर्मी और प्रमेह आदि गदी, लज्जाजनक, जान लेने वाली और जिन्दगी को भारभूत एव दु खमय बनाने वाली बीमारियाँ वीर्य के अनुचित विनाश से उत्पन्न होती है।

३९

स्त्री या पुरुष, जो व्यभिचारी होता है प्राय क्षय जैसे भयकर

राज रोगों के शिकार बनते हैं। राजयक्ष्मा से बचने का सर्वोत्तम उपाय शरीर के राजा वीर्य की रक्षा करना ही है। यदि राजा नहीं बचा तो बताओ प्रजा की क्या दुर्दशा होगी?

४०

भाइयो! जैसे ब्रह्मचर्य सब व्रतों में उत्तम है उसी प्रकार व्यभिचार सब पापों में बड़ा है। इसके कई कारण हैं। उनमें से एक कारण यह भी है कि और-और पापों की तरह यह पाप तत्काल समाप्त नहीं हो जाता किन्तु इसकी परम्परा लम्बी चली जाती है।

परस्त्री-गमन

१

परायी स्त्री को भी जूठन की उपमा दी गई है । अतएव उस पर ललचाने वाले कुलीन जन नही हो सकते कुत्तो के समान नीच जन ही उसकी अभिलापा करते है । परस्त्री-गमन भयानक अपराध और घोर पाप है । अनेक दु खो का कारण है ।

२.

कहो कहाँ केसर और कहाँ विष्ठा ! मगर मक्खी का ऐसा स्वभाव है कि वह केसर के पास नही जाती । उसे विष्ठा ही प्यारी लगती है । इसी प्रकार जो स्त्री, अपने विवाहित पति को छोड कर परपुरुष के पास जाती है, वह मानो केसर को छोडकर विष्ठा पर जाने वाली, गन्दगी को पसन्द करने वाली मक्खी के समान है । यह वात पुरुष के लिए भी है । परस्त्री का सेवन करने वाला पुरुष जूठन चाटने वाले कुत्ते के समान गर्हित है ।

३

रावण क्या ढोल वजा कर सीता को ले गया था ? नही, वह भी छिप कर अकेले मे ही ले गया था । फिर भी वात छिपी नही रही । इसी प्रकार लाख प्रयत्न करने पर भी तुम्हारा पाप छिपा नही रहेगा । वह एक दिन अवश्य प्रकट होगा और तुम्हे निन्दा एव घृणा का पात्र वना देगा ।

४

रावण कितना शक्तिशाली और तेजस्वी वीर पुरुष था । परस्त्री की स्वीकृति के विना उसका सेवन न करने की उसकी प्रतिज्ञा थी । फिर भी परस्त्री का अपहरण करने मात्र से उसे कितनी हानि उठानी पडी ? उसे राज्य से हाथ धोने पडे, प्राणो का परित्याग करना पडा,

कुल का क्षय हो गया। जब रावण जैसे शक्तिशाली पुरुष की भी यह दुर्दशा हो सकती है तो साधारण मनुष्य का तो कहना ही क्या है?

५

वीर रावण का विनाश क्यों हुआ? उसने परस्त्री-गमन नहीं किया सिर्फ परस्त्री-गमन करना चाहा था। अब आप विचार करो कि जिस पाप का सेवन करने की इच्छा-मात्र से रावण जैसे महान् सम्राट को अपने राज्य से ही नहीं अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा उस पाप के सेवन में साधारण मनुष्य की क्या हालत न होगी?

६

जो परस्त्री-लम्पट हैं और वेश्यागामी हैं वे भी रावण को पत्थर मारने दौड़ते हैं मगर यह नहीं सोचते कि जिस दोष के कारण रावण की यह दशा हुई वही दोष मुझ में और भी ज्यादा है तो मेरी क्या दशा होगी?

७

रावण का पुतला जलाने वाले! जरा अपनी तरफ तो देख! तू स्वयं रावण का बाप बना बैठा है और रावण को जलाने चला है! अरे, पहले तू अपनी दुर्वासनाओं को जला, जो तुझे रावण से भी गया बीता बना रही हैं पतित कर रही हैं और तब रावण के विषय में विचार करना।

८

सचाई सूर्य के समान है जो मिथ्या के मेघों में सदा के लिए छिपने की नहीं है। वह तो अन्तत प्रकट होने की ही है। सीता के सतीत्व पर कलंक लगाया गया था किन्तु क्या वह कलंक अन्त तक स्थिर रह सका? नहीं। सत्य आग को पानी बना कर प्रकट हो गया और उस सती को कलंक लगाने वाले ही कलंकित हुए।

९

दुश्चरित्र औरत को राक्षसी की उपमा दी गई है। उसके दोनों स्तन दो फोड़े हैं। जो ऐसी स्त्रियों के फंदे में फँस जाता है उसकी

वडी दुर्दशा हो जाती है। आरम्भ मे वे अपनी मोहक चेष्टाओ द्वारा पुरुप को अपनी ओर आकृष्ट करती है और जव पुरुष उनके चगुल मे फँस जाता है तो फिर उससे गुलाम जैसा व्यवहार करती हैं। ऐसे पुरुप के लिए जीवन भारभूत हो जाता है।

१०.

वेश्या का अधर क्या है? लुच्चो और गुण्डो के थूकने का ठीकरा है। जो अपनी प्रतिष्ठा को समझता है, वह भूल कर भी इस गलत रास्ते पर नही जाता।

११.

जिन लोगो को वेश्यागमन की गदी आदत पड जाती है, वे गर्मी, सुजाक आदि भीपण व्याधियो के शिकार हो जाते है और गल-गल कर मरते है। वे जीवन भर भयकर यातनाएँ भुगतते है और दूसरे लोग उनके प्रति सहानुभूति के दो शब्द तक नही कहते। परलोक मे जाने पर तपी हुई ताँवे की पुतलियो से उन्हे आलिगन कराया जाता है।

१२.

परस्त्री की कामना करने वाला, परस्त्री की ओर विकार भरी दृष्टि से देखने वाला, परस्त्री को देखकर कुचेष्टाएँ करने वाला और परस्त्री को भ्रष्ट करने वाला पुरुप घोर पातकी है। वह अपनी ही प्रतिष्ठा को कलकित नही करता, वरन् अपने कुल और परिवार को भी कलक लगाता है। वह अपने पुरखाओ के निर्मल यश को भी कलंकित करता है। वह गदगी का कीडा सव की नजरो मे गिर जाता है। सभी उससे घृणा करते है। उसके परिवार के लोग भी उसका मुख देखना पसद नही करते। वह जहाँ कही जाता है, अपमान और तिरस्कार का पात्र वनता है।

अपरिग्रह

१

परिग्रह घोर अनर्थकारी है। यह मनुष्य से अकरणीय कार्य करा लेता है। अनाचरणीय का आचरण करा लेता है परिग्रह की लालसा के वशीभूत होकर मनुष्य कितना गिर जाता है और किस प्रकार मानव से दानव बन जाता है यह बात किसी से और आपसे छिपी नहीं है। यह परिग्रह ही तो है जो मनुष्य को चोर बनाता है डकैत बनाता है, खूनी बनाता है और घोर से घोर अकृत्य करवाता है।

२

जिस परिग्रह को प्राप्त करने की कामना मात्र से आत्मा में अतीव कलुषित विचारों का उदय होता है मनुष्य अपनी मनुष्यता से भी पतित हो जाता है और अपने जीवन के प्रशस्त अंशों को भूल जाता है वह परिग्रह कल्याणकारी किस प्रकार हो सकता है ? कदापि नहीं।

३

जैसे पत्थर की नाव भारी होने के कारण समुद्र में डूब जाती है उसी प्रकार जो प्राणी परिग्रह के भार से भारी होता है वह संसार सागर में डूब जाता है। अतएव जिसे डूबने की इच्छा न हो उसे चाहिये कि वह परिग्रह का परित्याग करे।

४

निश्चिन्त बनने के लिए निष्परिग्रही बनना चाहिए।

कषाय

१

ईर्षा, द्वेष, लोभ आदि कषायो से प्रेरित होकर कितनी ही क्रिया क्यो न की जाय, आत्मा का कल्याण नही हो सकता। कितना ही लम्बा तिलक लगाओ और मुहपत्ती बाँधो, किन्तु आखिर तो कषायो को जीतना ही काम आयगा।

२.

तुम ईश्वर से मिलना चाहो, और झूठ, कपट, लोभ, लालच, मोह-ममता आदि को छोडना भी न चाहो, यह नही हो सकेगा। दो घोडो पर एक साथ सवारी नही हो सकती।

३.

जिसके अन्त करण मे कषाय की अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, उसका विवेक दग्ध हो जाता है। वह यथार्थ वस्तु-स्थिति का विचार नही कर सकता। वह अपने दोषो को न देखकर दूसरे के ही दोषो का विचार करता है।

४.

मोक्ष का बाधक कषाय भाव ही है। दाख का धोवन पीने वाला छठे गुणस्थान मे और मेथी का धोवन पीने वाला सातवे गुणस्थान मे हो सो बात नहीं है। मैले कपड़े पहनने मात्र से भी गुणस्थान नही चढता। गुणस्थान चढने के लिए कषाय को जीतने की आवश्यकता है। भुने चने या बोर का आटा खाने वाला भी अगर लोलुपता के साथ खाता है तो वह पाप का भागी होता है और यदि बादाम का सीरा विरक्त भाव मे खाता है तो वह पाप का भागी नही होता।

५.

कषायो की ज्यो-ज्यो उपशान्ति होती है, त्यों-त्यो गुणस्थानो की

उच्चता प्राप्त होती है। ससार भर के साहित्य को कण्ठस्थ कर लेने पर भी जिसने अपनी कषाय को तिरस्कृत नही जीता वह एक भी गुणस्थान ऊँचा नही चढ सकता। इसके विपरीत अगर ज्ञान विशेष प्राप्त नही हुआ है, फिर भी कषाय विजय का गुण प्राप्त हो गया है तो गुणस्थान-श्रेणी ऊँची चढ जायगी।

६

तत्त्वज्ञान के साथ कषाय का उपशम होने से ही आनन्द होता है। कोई बेले-बेले पारणा करे परन्तु कषायो का निग्रह न करे तो वह सच्चा तपस्वी नही कहा सकता। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान पा लेने पर भी अगर कोई कषायों को शान्त नही कर पाता है तो वह सच्चा तत्त्वज्ञानी नही है।

७

हे मुमुक्षुओ ! जो कोई भी क्रिया करो उसमे कषाय को जीतने का ध्येय प्रधान रूप से रखो। कषाय को न जीत सकोगे तो कितना ही तप क्या करो, कितने ही भले वेश मे रहो आत्मा को मुक्ति नही मिलेगी। अतएव कषाय के कचरे को हटाओ।

८

तपस्या आदि कोई भी बाह्य क्रिया तभी साथक होती है जब वह कषाय विजय मे सहायक हो। अतएव जो कुछ भी करो उसमे कषाय विजय ही प्रधान होना चाहिए। तपस्या करो तो शरीर पर से ममता कम करने के लिए कर्मों की निर्जरा करने के लिए और अप्रमत्त अवस्था प्राप्त करने के लिए करो भाव-पूजा प्रतिष्ठा यश आदि के लिए मत करो। ऐसा करोगे तो कष्ट भी उठाओगे और आत्मिक प्रयोजन को भी पूरा नही कर पाओगे। बल्कि कषायभाव मे उलटी वृद्धि होगी। मोक्ष और भी दूर चला जायगा।

९

कषायो की उपशान्ति ही आत्मा के उत्थान का चिह्न है। ज्ञान उच्च श्रेणी का हो फिर भी अगर कषायो का उपशम न हुआ तो ज्ञान व्यर्थ है। आत्मा की पवित्रता का प्रधान आधार निष्कषायवृत्ति ही है।

१०.

जैसे मदिरा का असर होने पर प्राणी बेभान हो जाता है, उसी प्रकार कषाय का आवेश होने पर भी प्राणी अपने आपको भूल जाता है। उसे अपना भला-बुरा भी नही सूझता और ऐसे-ऐसे काम कर गुजरता है कि उसे सदैव पछताना पड़ता है।

११.

वोतल मे मदिरा भरी है और ऊपर से डाट लगा है। उसे लेकर कोई हजार बार गगाजी मे स्नान कराए तो क्या मदिरा पवित्र हो जाएगी ? क्या वह गगाजल से पूत मदिरा पेय हो गई ? इसी प्रकार जिसका अन्तरग पाप और कषाय से भरा हुआ है, वह ऊपर से कितना ही साफ-सुथरा रहे, वगुले की तरह झक्-सफेद दिखाई दे, किन्तु वास्तव मे तो रहेगा अपावन ही।

१२.

समझदार आदमी विवेकवान होता है तो मजे मे घर अथवा दुकान जाता है किन्तु जो शराव पी लेता है और नशे मे होता है, वह वीच मे काँटो मे ही धडाम से गिर पडता है। इसी प्रकार कषाय और प्रमाद मे पडकर जीव दुर्गति मे जा पडता है। वस्तुत कर्म से ही सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। अतएव मनुष्य का प्रथम और प्रधान कर्त्तव्य एव उद्देश्य यही होना चाहिए कि वह कर्मो को नष्ट करने का प्रयत्न करे।

१३.

जो जितना कषायो का त्याग करता है, वह उतना ही अधिक धर्मनिष्ठ है, फिर भले ही वह किसी वेष मे क्यो न रहता हो।

१४.

जिसने कषायो को मारा उसने जन्म-मरण को मारा।

☆

क्रोध

१

क्रोधी मनुष्य स्वयं जलता है और दूसरों को भी जलाता है। सर्वप्रथम स्वयं सन्ताप करता है, जलन के कारण व्याकुल होता है, फिर दूसरों को सन्ताप पहुँचाने का प्रयत्न करता है। उसके प्रयत्न से दूसरों को दुःख हो या न हो, दूसरों का अहित हो भी सकता है और कभी नहीं भी होता, मगर क्रोधी आप स्वयं अपना अहित अवश्य कर लेता है। अतएव भगवान का आदेश है कि अगर तुम सन्ताप से बचना चाहते हो, जलन तुम्हें प्रिय नहीं है, शान्ति पसन्द है तो क्रोध को अपने काबू में रक्खो। क्षमा भावना को बढ़ाओ।

२

क्रोध बहुत बुरा दुर्गुण है। यह अकेला ही दुर्गुण समस्त सद्गुणों को नष्ट करने वाला है। यह नरक का द्वार है। जिसने इस दरवाजे में प्रवेश किया उसे नरक पहुँचते देर नहीं लगती।

३

क्रोधी का खून सूख जाता है। उसका शरीर रुग्ण हो जाता है। क्रोधी स्वयं दुःखी होकर घर के सब लोगों को दुःखी बना देता है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है। वह चिड़चिड़ा हो जाता है। वह जो कुछ खाता-पीता है उसका रस क्रोध की आग में भस्म हो जाता है।

४

भाइयो! क्रोध की आग वह आग है जो पहले अपने आश्रय को ही जलाती है। जिस चित्त में क्रोध की ज्वालाएँ दहकती हैं वह चित्त ही पहले-पहल जलता है। क्रोध की ज्वालाएँ दूसरे को जलाएँ और कदाचित न भी जलाएँ पर अपने उत्पत्ति स्थान को तो जला कर राख कर ही डालती हैं।

५.

आग भी जलाती है और क्रोध भी जलाता है, किन्तु दोनो से उत्पन्न होने वाली जलन मे महान् अन्तर है। आग ऊपर-ऊपर से चमडी आदि को जलाती है, मगर क्रोध अन्तरग को समाप्त करता और जलाता है। क्रोध की अग्नि वडी जवर्दस्त होती है।

६.

क्रोध को चाण्डाल की उपमा दी जाती है। वास्तव मे देखा जाय तो असली चाण्डाल क्रोध ही है। जिसके चित्त मे क्रोध का वास है वह स्वय चाण्डाल है।

७.

क्रोधी मनुष्य जव क्रोध के आवेश मे आता है, तो उसमे एक प्रकार का पागलपन आ जाता है। पागल आदमी जैसे अपने हित-अहित का विचार नही कर सकता, उसी प्रकार क्रोधी भी। यही कारण है कि वह कोई भी अनर्थ करने मे सकोच नही करता।

८.

क्रोध से जो पागल होता है, वह सत्-असत् का विचार करने मे असमर्थ हो जाता है। क्रोध की आग मे उसकी विचार-शक्ति भस्म हो जाती है। वह न वोलने योग्य भापा वोलता हे, न करने योग्य कार्य करता है और न करने योग्य सकल्प करता है। वह क्रोध की आग में स्वय भी जलता है और दूसरो को भी जलाता हे।

९

क्रोध से तपस्वी की तपस्या छिन्न-भिन्न हो जाती है। जैसे हलुवे मे कपूर की धूनी दे दी जाय, कलाकद मे सखिया डाल दिया जाय तो वताओ क्या वह खाने योग्य रहेगा ? उसी प्रकार तप और त्याग मे यदि क्रोध का मेल हो जाय तो सारी तपस्या व्यर्थ हो जाती है।

१०.

क्रोध सर्वत्र अनर्थ का ही कारण होता है। वह देश मे, जाति मे, समाज मे, परिवार मे और मित्र-मण्डली मे अशान्ति पैदा कर देता

है फूट डाल देता है और अव्यवस्था उत्पन्न करके उसका विनाश कर डालता है। अतएव शास्त्रों में यही उपदेश दिया गया है कि क्रोध का त्याग देना चाहिए। क्रोध धर्म का, आत्म-कल्याण का विनाशक है और अत्यन्त भयानक है।

११

मनुष्य जब क्रोध में आता है तो भद्दे शब्दों का प्रयोग करता है और फिर उन उन शब्दों के लिए लज्जित होना पड़ता है। बनिया मांस नहीं खाता लेकिन क्रोध में आकर बोलता है कि तुझे कच्चा ही खा जाऊँगा'। ऐसी भाषा सभ्य और धार्मिक पुरुषों को कभी नहीं बोलनी चाहिए। कदाचित् मन पर काबू न रहा हो और आवेश में ऐसे शब्द निकल गये हों तो प्रायश्चित लेकर शुद्धि कर लेनी चाहिए और जिससे ऐसा शब्द कहे हों उससे क्षमा माँग लेनी चाहिए।

१२

जैसे पागल मनुष्य को न अपने हित-अहित का भान रहता है और न दूसरों के हिताहित का ख्याल रहता है। उसी प्रकार क्रुद्ध मनुष्य भी भलाई-बुराई का भान भूल जाता है। क्रोध के कारण कभी-कभी लोग आत्म हत्या तक कर डालते हैं।

१३

जिस प्रकार पानी की तह में जमे हुए कीचड़ को हाथ डालकर हिला दिया जाय तो निर्मल जल भी मैला हो जाता है इसी प्रकार क्रोध के कारण समझदार आदमी भी क्षण भर में मूर्ख बन जाता है।

१४

क्रोध के आवेश में मनुष्य अंधा हो जाता है। वह पागलपन की स्थिति में पहुँच जाता है। उसका मस्तिष्क शून्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में ही कोई-कोई आत्मघात तक कर लेता है। अतएव क्रोध बड़ा ही भयंकर शत्रु है।

☆

मान

१.

चिउँटी के जव पर आते है तो लोग कहते है कि यह पर नही मरने की निशानी है, यमराज का नोटिस है। जव किसी आदमी मे घमण्ड का भाव अत्यधिक वढ गया हो और वह घमण्ड के कारण फूल रहा हो तो समझो कि इसकी मौत इसके सिर पर चक्कर काट रही है।

२

अभिमान पाप का मूल है। अभिमान उन्नति और प्रगति के पथ का एक जवर्दस्त रोडा है। अभिमान मनुष्य को अन्धा वना देता है। जो अभिमान से अन्धा वन जाता है उसे अपने अवगुण और दूसरे के सद्गुण नही दिखाई देते। अभिमानी मनुष्य उचित-अनुचित का भेद भूल जाता है। विनय को नष्ट करने वाला अभिमान ही है। अतएव अपना कल्याण चाहते हो तो अभिमान का त्याग करो। वडो-वूढो का आदर करो।

३

यह अहकार वडा भारी दुर्गुण है। नाना रूपो मे यह मनुष्य को अपने अधीन वनाता है। कलदार वढे और अभिमान वढा, बुद्धि खिली कि अभिमान भी खिला। पाँच आदमी पूछने लगे कि घमण्ड वढ गया। जरा-सा गुण आता है तो दुर्गुण भी उसके साथ भगा आता है। किसी को भला आदमी समझ कर मुखिया वनाया और वही काटने दौड पडा।

४

गधेटा चिल्लाता है—टी-भू-टी-भू अर्थात् जो हूँ सो मैं हूँ मगर कौन उसे वडप्पन देता है? इसी प्रकार जो मनुष्य अहकार से चूर रहता है और अपने सामने किसी को कुछ गिनता ही नही है, उसे सम्यग्वोध की प्राप्ति होना कठिन है।

५

अभिमान पतन की ओर ले जाने वाला घोर शत्रु है। वह विनाश का स्रष्टा है। उसके चंगुल से अपनी रक्षा करो अपने आपको बचाओ। निरहंकार वृत्ति अभ्युदय की सीढी है। ज्यों-ज्यों नम्रता धारण करोगे ऊँचे उठोगे। शास्त्रों का कथन है कि नम्रता धारण करने से उच्च गोत्र का बंध होता है और अहंकार करने से नीच गोत्र कर्म बंधता है।

६

अभिमानी पुरुष दूसरों के सद्गुणों को भी दुर्गुणों के रूप में देखता है और अपने दुर्गुणों को भी सद्गुण समझता है। फल यह होता है कि वह सद्गुणों से वंचित रहता है और दुर्गुणों का भंडार बन जाता है।

७

अभिमान एक प्रकार की बीमारी है जो समस्त गुणों को कृश और दुर्बल बना देती है। अभिमानी के समस्त गुण अवगुण बन जाते हैं। वह आदर का नहीं, घृणा का पात्र बनता है। इसके विरुद्ध विनीत पुरुष आदर-सम्मान के योग्य समझा जाता है। अतएव अपने मन में भूलकर भी कभी अभिमान मत आने दो।

८

भाइयो! अभिमान मनुष्य का एक प्रबल शत्रु है। जो अभिमानी है वह स्वभावतः अपने राई जितने गुणों को पर्वत के बराबर और दूसरों के पर्वत के बराबर गुणों को राई के बराबर समझता है। उसके ऐसा समझने से दूसरों की कोई हानि नहीं होती उसी की हानि होती है क्योंकि उसके सद्गुणों का विकास नहीं हो सकता। वह न विद्या प्राप्त कर पाता है न विनय प्राप्त कर सकता है और न दूसरे सद्गुण ही पाता है। अभिमानी को लोग हिकारत की निगाह से देखते हैं। उन्नति में जितना बाधक अभिमान है उतना और कोई नहीं। अतएव अभिमान को त्याग देना ही श्रेयस्कर है।

९

वास्तविक दृष्टि से देखोगे तो आपको अवश्य ऐसा जान पड़ेगा

कि अहंकार करने योग्य वस्तु ही आपके पास नही है। दुनिया मे एक से एक वढकर सद्गुणी पड़े है, श्रीमन्त है, वलवान है, विद्यावान है। क्या तुम समझते हो कि तुम्हारा स्थान विश्व मे अद्वितीय है? कदाचित् ऐसा है तो भी अहकार के लिए कोई कारण नही है। क्योकि जिस चीज के लिए तुम अहकार करते हो, वह स्थायी नही है और तुम्हारी नही है।

१०.

अहकार ससार-सागर मे गोते खिलाने वाला है। शरीर सुन्दर हुआ, पैसा कुछ ज्यादा इकट्ठा हो गया, वी ए या एम ए की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली, दुकान मे नफा होने लगा या ग्राहक अधिक आने लगे, प्रेसीडेन्ट साहव वन गये बस अहकार आ जाता है। यह सव अहकार आने के कारण है। मगर सत्त्वशाली मनुष्य वही है जो अहकार की सामग्री विद्यमान होने पर भी—विद्या, सम्पत्ति, वल, रूप आदि होने पर भी अहकार नही करता।

११

मैं रूप का या वल का अभिमान करूँ? मगर वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो मैं अरूपी हूँ। रूप पुद्गल का स्वभाव है, आत्मा का स्वभाव ही नही है। रूप मेरा विकार है और मेरा कलक है। मेरे लिये जो कलक की चीज है, उस पर अभिमान कैसे करूँ? वल आत्मा का गुण है और वह अनन्त है। उस अनन्त वल मे से असख्यातवाँ हिस्सा भी आज मुझे प्राप्त नही है। फिर अभिमान कैसा?

१२

कुल और जाति का अभिमान करना मूर्खता है। अनादि काल से ससार मे भ्रमण करते-करते इस जीव ने सभी जातियो मे और सभी कुलो मे अनन्त-अनन्त वार जन्म धारण किया है। अनन्त वार यह चाण्डाल कुल मे जन्म ले चुका है। फिर जाति और कुल का अभिमान किसलिए? और दरअसल न तो कोई जाति ऊँची होती है और न नीची होती है। उच्चता और नीचता का आधार कर्त्तव्य है। ऊँचा कर्त्तव्य करने वाला ऊँचा और नीचा कर्त्तव्य करने वाला नीचा होता है।

१३

तुम्हे एश्वय मिला है तो उसके अभिमान म ऐंठना ठीक नही है। कितना एश्वय है तुम्हारे पास ? चक्रवर्ती वासुदव और बड़े-बड़े सम्राटों के एश्वय के आग तुम्हारे ऐश्वय की क्या गिनती ? वे भी खाली हाथ चले गये तो तुम क्या लेकर जाने वाले हो ?

१४

क्या तू जवानी का घमड करता है ? जवानी का घमन्ड करन से पहले बूढ़ों म तो पूछ ले। वह भी एक दिन तेरे ही समान जवान थे। पर आज उनकी क्या अवस्था है ? तू समझता है कि वही बूढे हुए हैं और तू सदा जवान बना ही रहेगा कभी बूढा नही होगा। जवानी तो समुद्र की हिलोर है आई और चली गई। उस पर इतराना कैसा ?

१५

जब तक मल शरीर के भीतर है शरीर म शक्ति है। सारा मल निकल जाय तो हाथ-पर भी नही हिल सकते आँख भी नही खुल सकती इस प्रकार जिसकी जिन्दगी मल पर निभर है उस अभिमान करना क्या शोभा देता है ?

१६

जरा विचार कीजिए कि आपके पास अभिमान करने योग्य क्या है ? आपका शरीर इतना अशुचि है कि ससार मे दूसरी कोई वस्तु इतनी अशुचि नही। जिसमें से निरन्तर अशुचि पदाथ बहते रहते हैं जो क्षण भर म निर्जीव बन कर घोर बदबू देने लगता है और फिर जिसे प्रिय स प्रिय स्वजन भी शीघ्र स शीघ्र आग मे झोंक देने को तयार हो जाते हैं उस शरीर पर अभिमान !

१७

भाइयो ! पुण्य के योग स तुम्हें सुन्दर सबल और स्वस्थ शरीर मिल गया है तो अभिमान मत करो। शरीर म अभिमान करने की बात है भी क्या ? अगर शरीर की असलियत का विचार किया जाय तो यही नतीजा निकलता है कि देह अपवित्र है अपावन है बस म

कम अभिमान करने योग्य तो नही ! देखो न, कैसा मल का पुतला है यह शरीर ! नाक मे से रेट झरता है, आँखो मे से गीड निकलता है, मुँह मे से कफ तथा थूक निकलता है, एक तरफ से मल और एक तरफ से मूत्र वहता है ! भला ऐसी चीज का अभिमान क्या ? जब तक इसमे चेतनदेव विराजमान है तभी तक यह काम का है।

१८

जो ज्ञानवान होता है वह जानता है कि मै किस चीज पर अभिमान करूँ ? अभिमान करने योग्य मेरे पास क्या है ? धन-दौलत मेरे पास है तो क्या हुआ, दुनिया मे एक से बढकर एक धनवान है। इसके सामने मेरी सम्पदा तुच्छ है। उस पर मैं क्या अभिमान करूँ ? जिस धन-दौलत पर मै अभिमान करता हूँ उसे कीचड के समान समझ कर ज्ञानी पुरुषो ने त्याग दिया है। उसे ठुकरा दिया है।

१९.

यह कदापि न सोचिये कि कीर्ति की कामना का परित्याग कर देने से आपको कीर्ति नही मिलेगी। कीर्ति आपके सदाचार से और सद्गुणो से प्राप्त होगी। अगर आपका आचरण ऊँचा है, अगर आपके जीवन मे सद्गुणो की सुगन्ध है, अगर आपके कार्यो मे नीति की परम उज्ज्वलता है, अगर आप धर्म के द्वारा प्रदर्शित पथ पर ही चलने को उद्यत रहते है तो कीर्ति आपके पास भागी-भागी आयेगी। आप न चाहेगे तो भी आयेगी।

२०

सच तो यह है कि जो वस्तु आपसे भिन्न हो सकती है उसे अपनी कहना अज्ञान है। अपनी वस्तु अपने से कभी अलग नही होती। इस कसौटी पर कसकर देखो कि क्या तुम्हारा है और क्या नही है ? जब आपको यह ज्ञान हो जायगा कि हमारा क्या है और क्या नही है, तो भौतिक पदार्थो का अभिमान करना छूट जायगा। उस समय आप सोचेंगे कि जो हमारी है ही नही, उसका अभिमान कैसा ?

२१.

जैसे बालक के हाथ में पड़ी हुई तलवार उसके लिए घातक होती है, उसी प्रकार अभिमानी और अविनीत पुरुष का ज्ञान भी उसके लिए

हानिप्रद सिद्ध होता है । उसके लिए अथसाधक और कल्याणकारी शास्त्र भी अनथकर और अकल्याणकारी साबित होता है । यह शास्त्र भी शस्त्र बन जाता है । अतएव प्रत्येक कल्याणकामी साधक का सवप्रथम कत्तव्य यही है कि वह विनीत बन अपने धम-गुरु ज्ञानदाता एव उपकारी के प्रति विनम्र होकर रहे ।

२२

सब अपना-अपना भाग्य लेकर आये हैं । मनुष्य वथा ही अहकार करता है कि मेरे पुरुषाथ से मेरे प्रताप से मेरी कमाई से या मेरी सहायता स दूसरा का भरण-पोषण हो रहा है । चलती गाडी के नीचे-नीचे एक कुत्ता चल रहा था । वह समझता था कि गाडी को मैं ही चला रहा हूँ । यही दशा अधिकाश गृहस्थो की है । वे समझते हैं कि गृहस्थी की गाडी हमारे बल पर चल रही है । वास्तव मे कोई किसी क भाग्य को पलट नही सकता ।

२३

अभिमानी आदमी न स्वय सही बात सोच सकता है और न दूसरो की बात मानता है । वह तुच्छ होता हुआ भी अपने आपको महान् समझता है । एक मच्छर भैस क सीग पर बैठ गया । वह भैस स कहने लगा—क्यो रे पाडे ? मेरा वजन तुझे असह्य तो नही लगता ? भैसा कहने लगा—वाह र मच्छर ! क्या तू भी किसी गिनती म है ? इसी तरह गाड़ी के नीचे-नीचे कुत्ता चलता है । वह समझता है कि गाडा मेरे बल स चल रही है । मैं ही गाडी का सारा बोझ उठाये हूँ । उस मालूम नही है कि गाडी मे बल जुते है और वह गाडी को चला रहे हैं ।

२४

कठोर भूमि मे अकुर नही उग सकते । यही बात मनुष्य के हृदय की है । मनुष्य का हृदय जब कोमल होगा उसकी अभिमान रूपी कठोरता हट जायगी तभी उसमे धम का अकुर उग सकेगा । अभिमान को छोडे बिना आत्मा उन्नत नही बन सकता । जो जाव

अभिमान का त्याग करेगा वही सुखी बनेगा। वह दूसरों के सद्गुणों को ग्रहण करके सद्गुणी बन सकेगा।

२५.

बड़े सदा बडप्पन का ही विचार करते है। वे छोटो के मुकाबिले मे छोटे नही बन जाते। एक कुत्ता बोला—मै बडा जबर्दस्त हूँ। उससे पूछा गया—तुम किस बात मे बडे हो? उसने उत्तर दिया—मैं दुनिया पर भौकता हूँ, लेकिन मुझ पर कोई नही भौकता। उससे कहा गया—जनाब! दुनिया आप जैसी नही है, इसलिए नही भौकती। आप पर वही भौकेगा जो आप सरीखा होगा। इसलिए आप अपनी विजय का भले ही घमण्ड करे मगर दुनिया आपको जानती है।

२६.

मानी यह नही सोचता कि दूसरो की मेरे विषय मे क्या सम्मति है? अहकारी मनुष्य अपने आपको चाहे हिमालय से भी बडा समझ ले, मगर दूसरे लोग उसे तुच्छ या क्षुद्र ही समझते है। अहकारी आदर चाहता है किन्तु उसे घृणा मिलती है। आदर तो विनयवान् को प्राप्त होता है।

२७

देखो, बालक के दिल मे अहभाव नही होता। वह नही समझता कि मैं भी कुछ हूँ, तो वह बड़े-बड़े राजाओ के रनिवास मे भी बेरोक-टोक जा सकता है। उसके सब कसूर माफ है। मगर जो अपने को ही सब कुछ समझता है उसका सिर रहना भी कठिन है।

२८.

तुम्हारे सामने से दो रास्ते जाते है। उनमे से एक रास्ता पतन का है और दूसरा उत्थान का। अगर उत्थान के मार्ग पर चलोगे तो सर्वोत्कृष्ट देव विमान—सर्वार्थसिद्धि मे पहुँच जाओगे और फिर एक मनुष्य भव धारण करके मुक्ति प्राप्त कर लोगे। पतन के रास्ते पर चलने से नरक और निगोद मे जाना पड़ता है। 'मैं कुछ नही हूँ', यह उत्थान का मार्ग है और 'मैं ही सब कुछ हूँ, जो हूँ मैं ही हूँ', यह पतन का मार्ग है।

२६

जब तक आपके दिल म दया है और दिमाग म गरीबी का भाव है तभी तक ईश्वर आपके साथ है। जिस क्षण आपके चित्त म अहंकार का अकुर उत्पन्न हो जायगा और आप समझेंगे कि 'जो कुछ हूँ मैं ही हूँ' उसी क्षण ईश्वर आपका साथ छोड देगा।

३०

जो मनुष्य प्रतिष्ठा या पूजी बढ़ने पर भी समभाव मे रहता है वही उन्नति करता है। जो जरा-सा उन्नत होते ही आसमान म उछलने लग जाता है उसकी उन्नति तो रुक जाती है। वह अवनति के गहरे गर्त मे भी गिरे बिना नही रहता।

३१

जहाँ मान है वही अपमान है। ध्यान लगाकर देखोगे तो पता चलेगा कि जहाँ अभिमान है वहाँ ईश्वर नही है।

३२

अपने मुह अपनी प्रशसा करना एक प्रकार की मूर्खता है। यह प्रशसा समझदारों के सामने अप्रशसा रूप हो जाती है। अपने मुह मियाँ मिट्ठू बनने वाला घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

३३

जहाँ अभिमान है वहाँ विनय नही और जहाँ विनय नही वहाँ विवेक नही बुद्धि नही नम्रता नहीं मृदुता नही गुण-ग्राहकता नही। इस प्रकार विचार करने से विदित होगा कि अभिमान प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप म सब सद्गुणो को नष्ट करने वाला है। यह अनेक अनर्थों का मूल है।

विनय

१

विनय अखण्ड सुखस्वरूप मुक्ति को प्रदान करता है, विनय से सब प्रकार की श्री प्राप्त होती है, विनय से प्रीति की उत्पत्ति होती है और विनय से मति अर्थात् ज्ञान का लाभ होता है।

२.

भाइयो ! नम्रता बडी भारी चीज है। नम्रता विनय है और विनय तपस्या है। तपस्या से कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा होने पर कर्म हट जाते है और आत्मा विशुद्ध हो जाती है। आत्मा की विशुद्धि होने पर केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रकट होते है। इसलिए नम्रता बडी भारी चीज है।

३

किसी भी प्रकार की खेती करने के लिए पहले जमीन को कोमल बनाने की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार किसी भी गुण को प्राप्त करने के लिए विनय की आवश्यकता होती है।

४.

अगर आप अपना कल्याण चाहते है और गुणवान् बनना चाहते हैं तो विनय को ग्रहण कीजिये। विनय नगद धर्म है। उससे इस भव मे भी अनेक लाभ होते है और परभव मे भी महान कल्याण होता है।

५

ज्ञान का फल निरभिमानता है, अभिमानी होना नही। जिसने श्रुतज्ञान प्राप्त किया है, वह ज्ञान की असीमता को भली-भाँति समझ लेता है। कहा जाता है कि श्रुतज्ञान की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक निर्मल केवलज्ञान है। उसकी तुलना मे मेरा अधिक से अधिक ज्ञान भी नगण्य है। फिर अभिमान किस बिरते पर किया जाय ?

६

जैसे मूल के उखड़ जाने पर वृक्ष खड़ा नहीं रह सकता उसी प्रकार विनय के बिना धर्म स्थिर नहीं रह सकता। विनीत पुरुष सम्पत्ति का अधिकारी होता है और अविनीत आपत्तियों से घिरा रहता है।

७

विनय धर्म आत्मा में मृदुता उत्पन्न करता है। आत्मा की मृदुता अन्य समस्त सद्गुणों को खींच लाती है। अतएव मार्दव (विनय) भाव को अपनाओ। अभिमान को त्यागो। अभिमानी व्यक्ति सद्गुणों से वंचित रहता है और दूसरों की दृष्टि में तिरस्कार एवं घृणा का पात्र बनता है।

८

लोहा कितना कठोर होता है। एक मोहर के बदले बहुत-सा लोहा खरीदा जा सकता है। पर जब वह नम्र होता है तब उससे औजार बनाये जाते हैं और एक-एक औजार हजारों की कीमत का बन जाता है। यह मृदुता का ही प्रभाव है।

६

नम्रता वह वशीकरण है कि दुश्मन को भी मित्र बना लेती है। पाषाण हृदय को भी पिघला देता है। देखो ना पत्थर कितना कठोर होता है। उसमें यदि नख गड़ाया जाय तो वह टूट जायगा, लेकिन पत्थर का कुछ नहीं बिगड़ेगा। मगर रस्सी कितनी मुलायम होती है। प्रतिदिन उसकी रगड़ लगने से पत्थर में भी खड्डे पड़ जाते हैं। वास्तव में नम्रता और कोमलता बड़ी काम की चीज है। वह जीवन का बढ़िया शृंगार है आभूषण है। उससे जीवन चमक उठता है।

१०

सिर कौन झुकाएगा? जिसमें गुरुता होगी महत्ता होगी और साथ ही जो अपने को कुछ नहीं समझेगा। जो अपने को कुछ नहीं समझेगा वही सब कुछ समझा जायेगा और जो अपने आपको सब

कुछ समझेगा, वह कुछ भी नही समझा जायेगा । वह अपने को भले ही वडा समझे परन्तु लोग उसे तुच्छ समझेगे ।

११.

आम के वृक्ष मे जव फल लगते है तो वह झुक जाता है, नम जाता है। इसी तरह इमली आदि के फल वाले वृक्ष भी नम जाते हैं। मगर आकडा नही नमता है और कदाचित् नम जाता है तो टूट जाता है। आशय यह है कि जिसमे क्षुद्रता है, टुच्चापन है, वह नमना नही जानता। नमेगा तो योग्य ही नमेगा। विनय वड़े आदमियो का लक्षण है और अभिमान तुच्छ व्यक्तियो का लक्षण है। नमने से आदमी वडा माना जाता है।

१२

जैसे जड उखड जाने पर सम्पूर्ण वृक्ष धराशायी हो जाता है उसी प्रकार विनय के अभाव मे कोई भी धर्म नही टिक सकता।

१३.

अगर तुम्हारा अन्त करण विनय से विभूपित होगा तो उसमे धर्म का मधुर फल देने वाला अकुर अपने आप ही अंकुरित हो जायगा।

१४.

धर्म मे नम्रता धारण करने से मोक्ष मिलता है और ससार-व्यवहार मे नम्रता धारण करने से जीवन मे कष्ट नही होता है। रेल्वे की मुसाफिरी मे नम्रता दिखलाने से जगह मिल जाती है। अकडने वालो को धक्के खाने पडते हैं, उनका सामान फेंक दिया जाता है।

१५

जो नमता है वह लायक समझा जाता है। अतएव अगर कोई कहता है कि हम क्यो नमे ? तो उसे यही उत्तर दिया जा सकता है कि अगर लायक वनना हो तो नमो।

१६.

उपकार करने वाले तो फिर भी मिल जायेगे, मगर उपकार करके अभिमान न करने वाले विरले ही होते है। अधिकाश लोग तो

दाना भर उपकार करके मन भर ऐहसान जतलाते हैं। ऐसे लोगों के परोपकार की कीमत तुच्छ रह जाती है। वास्तव में वही व्यक्ति श्रेष्ठ और धर्मिष्ठ है जो दूसरे पर दया करके भी नम्रतापूर्वक रहता है, अभिमान नहीं करता और पर-दया को स्व-दया ही समझता है।

१७

भाइयो! विनय जाति-सम्पन्नता और कुल सम्पन्नता का लक्षण है। जिसकी जाति और जिसका कुल उत्तम और सुसंस्कारों से सम्पन्न होगा उसमें सहज ही विनयभाव उत्पन्न हो जायगा। यहाँ जाति का अर्थ ब्राह्मण क्षत्रिय आदि नहीं है और न ओसवाल अग्रवाल पोरवाल आदि ही है। शास्त्रों में इस प्रकार के जातिवाद को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है। जाति का अर्थ है—माता का पक्ष। जिसका मातपक्ष शुद्ध होगा सुसंस्कृत होगा और धार्मिक होगा उसकी संतति भी नम्र होगी और वही जाति-सम्पन्न कहलाएगा। वही त्याग प्रत्याख्यान लेकर भली भाँति निभाएगा।

१८

कुल का अर्थ है पितृपक्ष। जिसका पिता शुद्ध होगा अच्छे संस्कारों से युक्त होगा उसका पुत्र धर्म की जो बात पकड़ेगा उसे पार लगाएगा। राजा हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल की जघन्य चाकरी करना स्वीकार किया किन्तु अपना धर्म नहीं छोड़ा। इस प्रकार की कुलीनता जिसमें होती है वह विनयवान् होता है।

१९

पुत्र को पिता पर, लघुभ्राता को ज्येष्ठ भ्राता पर, इसी प्रकार प्रत्येक छोटे को बड़े के प्रति विनयभाव रखना चाहिए। ऐसा करने से गार्हस्थ्य-जीवन आनन्दमय शान्तिमय रसमय और सुखमय बनता है। विनयवान् के जीवन का विकास होता है और विनय विहीन का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

२०

विनय के बिना इस लोक में भी सुख-शान्ति नहीं मिलती। जिस कुटुम्ब में पुत्र पिता के प्रति और माता के प्रति विनय भाव रखता है

प्रत्येक छोटा अपने से वड़े के सामने विनम्रतापूर्ण व्यवहार करता है, उस कुटुम्ब मे आनन्द-मगल रहता है। स्नेह का मधुर रस वरसता है। वहू, सासू का विनय करेगी तो वह जव स्वय सासू बनेगी तो उसकी वहू भी उसके प्रति विनययुक्त व्यवहार करेगी।

२१

देखो ! रजकण हल्के होने से उडकर रईसों के सिर पर भी पहुँच जाते है, लेकिन पत्थर कठोर होने से ठोकर खाते रहते है।

२२.

जैसे पानी नीचे की ओर ही वहता है, ऊपर की ओर नही, उसी प्रकार गुण विनयशील व्यक्ति मे ही आते है। अभिमान के कारण जिसकी गर्दन ऊँची वनी रहती है, उसमे गुण नही आ सकते।

२३.

कपडा कही से थोडा-सा फट जाय और उसी समय साध लिया जाय तो अधिक फटने नही पायेगा। अगर लापरवाही रखी तो वह फटता ही चला जाता है और पहनने के काम का नही रहता। यही हाल अविनीत शिष्य का होता है। अतएव विनय-धर्म को अगीकार करके अविनय से दूर होना चाहिए।

२४.

जैसे सपूत वेटा वाप की भक्ति मे और भली वहू सासू की भक्ति मे उद्यत रहती है, उसी प्रकार चेले को गुरु की भक्ति मे तत्पर रहना चाहिए। इससे दोनो की आत्मा को शान्ति-लाभ होता है। गुरु को समझना चाहिए कि चेला मेरे संयम मे सहायक हे, आधारभूत है, साता पहुँचाने वाला हे, और चेले को समझना चाहिए कि गुरु महाराज मुझे अज्ञान के अन्धकार मे से निकालकर लोकोत्तर प्रकाश देने वाले हैं, मोक्ष का मार्ग दिखलाने वाले हैं। इस प्रकार विचार कर व्यवहार करने से दोनो का ही कल्याण होता है।

२५.

नाक कितनी ही ऊँची क्यो न हो, लल्लाट से तो नीची ही रहेगी।

इसी प्रकार चेला कितना ही बड़ा क्या न हो जाय गुरु से तो नीचा ही रहेगा। वह तपस्वी है त्यागी है—यह ठीक है फिर भी वह गुरु से ऊंचा नहीं हो गया है।

२६

जब गुरु के चरणों में भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाया जाता है तो मस्तक से समस्त पापों की पोटली नीचे गिर जाती है। सिर झुकाने पर मस्तक पर रक्खी हुई पोटली का गिर पड़ना स्वाभाविक ही है। मस्तक नम्र करना अपना भार दूर करना है। इसके विरुद्ध जो लोग गुरु के समक्ष अकड़ कर खड़े रहते हैं उनके सिर पर पापों की पोटली रखी ही रह जायगी, वह नीचे नहीं गिरेगी।

क्षमा

१.

क्षमा दुनिया मे बडी चीज है। उससे इहलोक भी सुधरता है और परलोक भी सुधरता है। जिसके घर मे क्षमा धर्म की प्रतिष्ठा होगी, उसके घर मे शान्ति रहेगी और अलग-अलग चूल्हे नही जलेगे। अलग-अलग चूल्हो के साथ कुटुम्बीजनो के दिल भी जला करते है, इसका कारण क्षमा का न होना ही है।

२.

अगर आपके हाथ मे क्षमा की ठण्डी तलवार है तो दुष्ट से दुष्ट जीव भी आपका कुछ बिगाड नही कर सकता। पानी मे आग पड जायगी, तो वह पानी को जला नही सकेगी, वल्कि स्वय ही वुझ जायगी।

३.

क्षमा आत्मा का वख्तर है। जिसने इस वख्तर को धारण कर लिया उसका कोई कुछ बिगाड नही कर सकता। विरोधियो के वाग्बाण उस पर असर नही कर सकते, प्रहार उस पर निरर्थक सावित होते है। उसका चित्त किसी भी आघात से क्षुव्ध नही होता। विरोधी झल्लाता है, चिल्लाता है, वकवाद करता है और आघात करता है, पर क्षमावीर पुरुष उसके सामने मुस्कराता है। वह अपनी सरल और निर्दोष मुस्कराहट से उसके समस्त प्रयत्नो को वेकार वना देता है।

४.

क्षमा-शीतलता मे वडी शक्ति है। शत्रु कितना ही गर्म होकर क्यो न आया हो, कितनी ही वचन रूपी चिनगारियाँ छोड रहा हो और क्रोध की आग से तमतमा रहा हो, अगर सामने वाला शीतलता पकड ले, अर्थात् शान्ति धारण कर ले तो उसे शान्त होना पडता है।

५

भाइयो ! बिजली कडक कर नदी या समुद्र मे पडती है मगर उसमे कुछ भी बिगाड नही होता । वह स्वय बुझ जाता है और खत्म हो जाती है । इसी प्रकार क्षमाधारी व्यक्ति के समक्ष क्रोध निष्फल हो जाता है ।

६

जिसका अन्त करण क्षमा से विभूषित होता है उसकी कीर्ति सारे ससार मे फैल जाती है । वह अपने आनन्द के लिए ही क्षमा का सेवन करता है, कीर्ति की कामना से प्रेरित होकर नही, फिर भी उसकी कीर्ति फैल ही जाती है । फूल अपनी सुगन्ध फैलाना नही चाहता फिर भी अगर उसमे सुगन्ध है तो वह बिना फैले कैसे रह सकता है ?

७

आग से आग शान्त नही होती खून से खून साफ नही होता क्रोध से क्रोध शान्त नही होता । आग को शान्त करने के लिए खून को धोने के लिए पानी की आवश्यकता है और क्रोध को उपशान्त करने के लिए क्षमा चाहिये ।

८

क्षमा की प्रबल शक्ति के सामने दूसरी कोई भी शक्ति नही टिक सकती । जैसे पानी मे गिरी हुई आग अपने आप ही नष्ट हो जाती है उसी प्रकार क्षमा के सामने दुर्जनता क्रोध आदि दुर्भाव भी स्वत नष्ट हो जाते है ।

९

बात-बात मे कुपित हो जाने वाला गुरुजनो की जरा-सी कठोर वाणी को सुनते ही आग उगलने वाला और क्रोध की आग मे स्वय जलने तथा दूसरो को जलाने वाला शिक्षा के योग्य नही है । अतएव जो क्रोधरहित होता है जिसका अन्त करण शान्त रहता है वही शिक्षा पा सकता है ।

१०

क्रोध कर आप भी आग बबूला हो गये और नागे के सामने नागा बनने की नीति अगीकार की तो उसका भी फजीता होगा और आपका भी फजीता होगा। वह क्रोधी है और आप भी क्रोधी हो जाएँगे तो दोनो मे क्या अन्तर रह जायेगा ? उसके समान बन जाने पर भी आपको कोई लाभ नही होगा ? आपकी आत्मा तो कषाय से कलुषित हो ही जायगी।

११.

देखो, दु ख सहे विना सुख नही मिलता है। वच्चियो के कान और नाक छेदते समय उन्हे कष्ट होता है, मगर वाद मे जब हजारो की लागत के लौग पहनती है तो उन्ही को आनन्द आता है। अतएव भाइयो, प्रयत्न करो कि तुम्हारे जीवन मे क्षमा का गुण उत्तरोत्तर वढता चला जाय।

१२.

भाइयो ! गाली देने वाला अगर नीच है तो उसके वदले चार गालियाँ देने वाला चौगुना नीच क्यो नही गिना जायगा ? वास्तव मे वही ऊँचा और वडा है जो कटुक वचनों को शान्ति के साथ सहन कर लेता है।

१३

जिसने क्षमा रूपी तलवार अपने हाथ मे ले ली है, शत्रु और दुर्जन उसका कुछ भी विगाड नही कर सकते। पानी मे फेकी हुई आग, पानी को क्या जलाएगी, वह स्वय ही बुझ जाएगी।

माया

१

माया! माया की शक्ति अद्भुत है। जिसके पास माया आ जाती है, वह नीति-अनीति की बात को भुला देता है। सम्पदा मनुष्य का घमंडी बना देती है। अक्सर सम्पत्तिवान लोग सहानुभूति से हीन, असहवाज और कठोरचित्त हो जाते हैं। सम्पत्ति में कुछ ऐसा स्वभाव होता है जो हृदय को शुष्क बना देता है—सरस हृदय को भी नीरस बना देता है।

२

मायाचारी व्यक्ति ऊपर से शान्त-सा दिखलाई देता है परन्तु उसके मन में कषाय का ज्वालामुखी भभकता रहता है। उस स्वयं को शान्ति नहीं निराकुलता नहीं। जिस आत्मा में शान्ति नहीं निराकुलता नहीं उस सुख की प्राप्ति हो ही कैसे सकती है? इस प्रकार मायाचारी मनुष्य अपना जीवन दुखमय, आकुलतापूर्ण और अशान्त बना लेता है। उसका आगामी भव भी घोर क्लेश में व्यतीत होता है क्योंकि माया अधोगति में ले जाती है।

३

बहुत से लोग इस भ्रम में रहते हैं कि हमने छल-कपट करके धन कमाया है परन्तु छल-कपट से धन नहीं मिलता। धन और दूसरी सुख-सामग्री पुण्य के योग से मिलती है। इसलिए छल-कपट छोड़कर पुण्य का उपार्जन करो।

४

जो आदमी मकान आदि में अनाप-शनाप खर्च करे और पराये बच्चों को खूब मिठाई खिलावे उससे सावधान रहना चाहिए। समझ लो कि वह धोखा देगा। धूर्त लोग माठा बोलकर गजब कर डालते हैं। दगाबाज जो न करें सो थोड़ा है।

५.

माया मनुष्यो को गधे की तरह दुलत्ती झाडती है। जब लक्ष्मी आती है तो कमर पर ऐसी कस कर लात लगाती है कि मनुष्य की छाती आगे निकल आती है। इसीलिए तो सम्पत्तिशाली सीना फुलाकर अकडता हुआ-सा चलता है। और जब वह जाने लगती है तो उस फूली हुई छाती पर लात मारती है। इसी कारण लक्ष्मी के चले जाने पर लोग झुक जाते है, उनकी छाती भीतर की ओर घुस जाती है।

६.

परमात्मा के दरबार मे तो उन्ही की पहुँच होगी जो भीतर-बाहर से एक से शुद्ध और पवित्र होगे। जो हृदय से बगुला के समान और बोलने मे कोयल के समान है, उन ढोगियो का, कपटियो का निस्तार होने वाला नही है। ढोग से दुनिया को ठग सकते हो, परन्तु परमात्मा को नही ठग सकते। अतएव निस्तार चाहते हो और भवोदधि का शोपण करना चाहते हो तो निष्कपट बनो।

७.

मायाचारी मनुष्य की बात पर किसी को विश्वास नही होता। मायावी मनुष्य छल-कपट करके दूसरो के लिए जाल बुनता है, मगर अन्तत· वह स्वय ही अपने बुने जाल मे फँसता है।

८.

विश्वासघात किसी को आनन्ददायक नही हो सकता। विश्वासघाती के चित्त मे कभी शान्ति नही रहती। वह अपने विचारो के तन्तुओ मे न जाने कितने ताने-बाने बुनता रहता है और अपना भेद खुल जाने के भय से डरता रहता है। न उसे इस जीवन मे चैन मिलता है न परलोक मे ही। स्वर्ग का भव्य द्वार उसके लिए बन्द है।

☆

लोभ

१

यह लोभ समस्त पापों का बाप है। लोभ के कारण ही समस्त पापों की उत्पत्ति होती है। यही द्वेष और क्रोध आदि का जनक है कोई ऐसा पाप नहीं जो लोभ के कारण न हो सके।

२

लोभ समस्त दोषों की खान है। समस्त गुणों को ग्रस लेने वाला राक्षस है। समस्त सारे दुःखों का मूल है और सब अर्थों का बाधक है।

३

लोभ मनुष्य का बड़ा ही भयानक शत्रु है। वह हजारों पापों का पथ खड़ा कर देता है। कौन-सा ऐसा अनर्थ है जो लोभ से उत्पन्न न होता हो।

४

लोभ कषाय के वशीभूत हुआ मनुष्य आँखें रखते भी अंधा बन जाता है कान रहते भी बहिरा हो जाता है। उसे अपने कर्तव्य-अकर्तव्य का भान नहीं रहता। लोभी अपने मित्रों के साथ भी धोखा और विश्वासघात करने से नहीं चूकता।

५

जिसके अन्तःकरण में लोभ रूपी पिशाच प्रवेश कर गया है उसके लिए कोई भी जघन्य कृत्य कठिन नहीं है। वह अपने माता पिता की हत्या कर सकता है अपने पुत्र और मित्र का घात कर सकता है, वह स्वामी के प्राण ले सकता है यहाँ तक कि अपने सहोदर भाई की जान भी लेने से नहीं चूकता।

६

लालची मनुष्य केवल धन-दौलत को ही देखता है। उस धन को

प्राप्त करने मे और उसको प्राप्त कर लेने के फलस्वरूप कितनी विपत्ति झेलनी पड़ेगी, इस बात को वह जरा भी नही देखता। विलाव दूध को ही देखता है, दूध के पास जाने पर लाठी के होने वाले प्रहार की ओर से वह आँखे मीच लेता है।

७.

लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से द्रोह पैदा होता है और द्रोह के प्रभाव से नरक मे जाना पडता है। विचक्षण मनुष्य भी लोभ के कारण मूर्ख वन जाता है।

८.

लोभी मनुष्य सुख का स्वाद लेना नही जानता। वह दु खो को भोगने और पापो का उपार्जन करने के लिए ही जीवित रहता है।

९.

लोभ से सव पापो मे प्रवृत्ति होती है। जितना लोभ करोगे उतनी ही गरीवो के गले पर छुरी फेरोगे! सौ हजारपतियो को गरीव वना कर एक लखपति वनता है! लखपति वन कर जिसने गरीवो की सहायता नही की, वह उस सचित किये धन का क्या करेगा? छाती पर वाँध कर परलोक मे ले जायेगा? चक्रवर्ती की असाधारण ऋद्धि भी जव यही पडी रह जाती है तव, ऐ श्रीमन्त! तेरी लक्ष्मी कैसे तेरे साथ जाएगी?

१०.

हे लोभी, यह आममान से वाते करने वाली हवेलियाँ यही रह जायेगी। सोना तिजोरियो मे धरा रह जायगा, जवाहरात डिव्वो मे भरा रह जायगा। तुझे जव चार जने उठा कर ले जाएँगे तव केवल एक चादर तेरे ऊपर डाल दी जाएगी। तेरे शरीर पर के वस्त्र और आभूषण सव उतार लिये जायँगे। तुझे नगा करके विदा किया जायगा।

११

क्रोध प्रीति का नाशक है, मान विनय भाव का विनाश करता है, मायाचार मे मैत्री मटियामेट हो जाती है। इस प्रकार इन तीन पापो

से एक-एक ही सद्गुण नष्ट होता है परन्तु लोभ-लालच से तो सब नाश हो जाता है।

१२

ज्यों ज्यों लाभ होता जाता है त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है। असल बात तो यह है कि लाभ से ही लोभ बढ़ता है। लोभ वृद्धि का कारण लाभ है। अतएव कारण की अधिकता होने पर कार्य की अधिकता होना स्वाभाविक ही है।

१३

क्रोध से प्रीति का नाश होता है। मान से विनय का नाश होता है माया से मित्रता का नाश होता है परन्तु लोभ से सभी कुछ नष्ट हो जाता है। यह तमाम अच्छाइयों पर पानी फेर देता है।

१४

समग्र संसार लोभ से अभिभूत है। लोभ के कारण ही समस्त पापों का आचरण किया जाता है। लोभ पाप का बाप है। मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ कितनी हैं? उसका छोटा-सा शरीर है और छोटा-सा पेट है। शरीर ढँकने और पेट भरने के लिए संसार भर की सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं है। करोड़ों और लाखों की सम्पत्ति भी नहीं चाहिए। पेट के लिए सुबह-शाम चार रोटियाँ ही बस हैं। थोड़े से वस्त्रों से ही काम चल सकता है। अधिक संचय न यहाँ काम आता है न परलोक में साथ जाता है। यह एक ऐसी बात है कि इसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं।

तृष्णा

१.

जैसे आकाश का कही और कभी अन्त नही है उसी प्रकार तृष्णा का भी कही अन्त नही है।

२.

समुद्र का छोर है पर तृष्णा का छोर नही है।

३

अगर आप दु खो की जड को तलाश करने चलेगे तो मालूम होगा कि वह जड असन्तोष ही है। अधिकाश लोग असतोष के कारण ही दु खी देखे जाते है। मनुष्य को अपना जीवन-निर्वाह करने के लिए कितना चाहिए ? वह पेट मे कितना अन्न खा सकता है और कितने कपडे लपेट सकता है ? जितने की आवश्यकता होती है, उतना प्राय. सभी को मिल जाता है। फिर भी उनके अन्त करण मे असन्तोष की आग दहकती रहती है। वे उस आग मे अपने जीवन की सम्पूर्ण शाति और निराकुलता को स्वाहा कर देते है। "आवश्यकता है तन की और तृष्णा है मन की।" सोने को चार हाथ जमीन चाहिए, पर विशाल महल बनवा लेने पर भी सन्तोष नही। एक महल बन गया है तो दूसरे के मसूबे किये जा रहे है। हजारो है तो लाखो की तृष्णा लगी है और लाखो है तो करोडो की कामना हो रही है। निश्चित है कि उतनी सम्पदा उपयोग मे नही आ सकती फिर भी सन्तोष कहाँ है ?

४.

धन की मर्यादा नही करोगे तो परिणाम अच्छा नही निकलेगा। लकडियाँ झोंके जाओ और आग बढती चली जायगी। ईंधन डालते जाने से आग कभी शान्त नही हो सकती। तृष्णा भी आग है। उसमे ज्यों-ज्यो धन का ईंधन झोकते जाओगे, वह बढती ही जायगी। वह विकलता पैदा करेगी। चैन नही लेने देगी। तो भाई ऐसे धन से क्या

लाभ हुआ ? इस धन ने तुम्हें क्या सुख दिया ? इसीलिए मैं कहता हूँ कि धन की मर्यादा कर लो। न करोगे तो तृष्णा की आग में झुलसते जाओगे, शान्ति नहीं पाओगे और अपने जीवन को बर्बाद कर लोगे।

५

बाहर की अग्नि से अधिक भयंकर अग्नि तृष्णा की है। स्थूल अग्नि से तो स्थूल पदार्थ ही जलते हैं परन्तु तृष्णा की आग में आत्मा भी जलती है। तृष्णा की आग व्यापक है। सारा संसार इस आग में जल रहा है। भगवान के नाम-कीर्तन से यह आग भी शान्त हो जाती है।

६

जैसे आग से आग शान्त नहीं होती। उसी प्रकार धन से धन की तृष्णा शान्त नहीं होती। जैसे ईंधन झोंकते जाने से आग बढ़ती ही चली जाती है उसी प्रकार धन को प्राप्त करने से धन की इच्छा भी बढ़ती ही जाती है।

७

भाइयो! जैसे आग को शान्त करने के लिए पानी अपेक्षित है उसी प्रकार तृष्णा की आग को बुझाने के लिए सन्तोष धारण करने की आवश्यकता है। भगवान ने निर्देश दिया है कि परिग्रह को कम करोगे और अपनी इच्छा पर नियन्त्रण करोगे तभी यह आग शान्त हो सकती है। इच्छाओं की पूर्ति करने का प्रयास करोगे तो यह आग शान्त होने के बदले बढ़ती ही चली जायगी।

८

जो हजारों का मालिक है वह लाखों का स्वामी बनना चाहता है और जो लाखों का स्वामी है उसे करोड़पति बनने की धुन सवार है। इस प्रकार लोग तृष्णा के अनन्त प्रवाह में बहे जा रहे हैं। उनका कोई स्थल स्थिर नहीं है। कि पैसा के अभाव में शान्ति नहीं मिल सकती। सच्ची शान्ति त्याग और सन्तोष में है। धर्म की आराधना करने से ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है।

९.

असन्तोष दुःख का बीज है। कितनी ही सम्पत्ति क्यो न हो, अगर उसके साथ सन्तोप नही है तो वह शान्ति प्रदान नही कर सकेगी। इसके विपरीत सन्तोषी पुरुप स्वल्प सामग्री मे ही परम सुख का आस्वादन कर लेता है।

१०

देखो साँप हवा का पान करते है फिर भी दुर्बल नही होते। जगली हाथियो को बादाम का हलवा कोई नही खिलाता, वे रूखे-सूखे तिनके खाते है। फिर भी कितने बलशाली होते हैं? इसका कारण क्या है? असली बात यह है कि वे सन्तोप धारण करते हैं और सन्तोप के प्रभाव से उनका काम चल जाता है। सन्तोप ही मनुष्य के लिए बड़े से बडा खजाना है।

११.

अगर सच्चा सुख और सच्ची शान्ति चाहते हो तो धन की मर्यादा करके तृष्णा पर अकुश लगाओ।

१२

चक्रवर्ती, वासुदेव और बलदेव की सम्पत्ति पा लेने पर भी, संतोप-हीन मनुष्य कभी तृप्त नही हो सकता और तृप्ति के बिना सुख की प्राप्ति नही हो सकती। ऐसा जान कर धीर पुरुप कभी लोभ-रूपी ग्राह के अधीन नहीं होते है।

ईर्ष्या

१

ईर्ष्यालु पुरुष दूसरे का उत्कर्ष सहन नहीं कर सकता। उसने किसी की बड़ाई सुनी और उसके दिल में द्वेष की दावानल लहलहा उठी। जैसे चुपचाप चले जाते राहगीर को देखकर कुत्ता निष्कारण ही भौंकने लगता है, उसी प्रकार किसी भी सौभाग्यशाली को देखकर द्वेषी जलने लगता है।

२

भोगी त्यागी को देखकर जलता है। धनवान को देखकर निर्धन कुढ़ते हैं। निरोग को देखकर रोगी जलता है। सुन्दर और रूपवान पर नजर पड़ने से कुरूप को जलन होती है। यह स्वाभाविक है। केसर और काजल में बनती नहीं है।

३

पानी की वर्षा होती है तो सब प्रकार की वनस्पतियाँ पनपती फूलती हैं। किन्तु जवासा नामक एक वनस्पति इसका अपवाद है। जैसे जैसे वृष्टि होती है वह सूखता जाता है। यदि जवासा को पसन्द नहीं आती तो क्या भाई! इसमें पानी का क्या दोष? इसी प्रकार जो पुरुष दुर्गुणों का अखाड़ा बना हुआ है, वह सद्गुणों और सद्गुणशाली को देख-देख कर ईर्ष्या की आँच से तपता रहता है और गुस्सा करता है। दुर्गुणी को गुणवान की बात पसन्द नहीं आती। यहाँ तक कि मिथ्यात्वी पापी को तो परमात्मा की महिमा भी नहीं रुचती है। इसमें गुणवान का क्या दोष है।

राग-द्वेष

१.

जितनी भी राग-द्वेप रूप परिणति है, आत्मा को पतन की ओर ले जाने वाली है। वह पडने का मार्ग है।

२.

ससार और संसार सम्बन्धी जितने भी दुःख है, उन सब का कारण विपमभाव है। अगर राग-द्वेप रूप विपमभाव नष्ट हो जाय तो किसी प्रकार का दुःख उत्पन्न न होगा।

३.

राग और द्वेप की आग मे यह सारा जगत जल रहा है। स्थूल अग्नि तो स्थूल शरीर को ही जलाती है मगर यह भीतरी आग आत्मा के सद्‌गुणो को विनष्ट करती है या विकृत करती है। स्थूल अग्नि एक ही जन्म मे मार सकती है मगर राग-द्वेप की अग्नि जन्म-जन्मान्तर मे आत्मा को सताया करती है।

४.

जिस आदमी के शरीर मे द्वेप तीव्र रूप मे रहता है, उसका खून जल जाता है। वह अच्छे-अच्छे पौष्टिक माल खावे तो भी दुवला ही वना रहता है। द्वेप से मनुष्य को घोर हानि उठानी पडती है। द्वेपी मनुष्य स्वय तो हानि उठाता ही है पर दूसरों की भी हानि करता है।

५.

द्वेप एक प्रकार की अग्नि है। यह अग्नि जब हृदय मे भडकती है तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है। वह उस आग मे दूसरो को जलाना चाहता है। दूसरा जले या न जले वह स्वय तो बुरी तरह जल ही जाता है।

आपके सुख की मात्रा बढती जायगी 'और आप अपूर्व शान्ति एव स्वस्थता का अनुभव करते जाएँगे। अन्त मे पूर्ण आत्मिक आनन्द की प्राप्ति कर सकेगे।

१२

राग और द्वेष दोनो ही कर्म-वन्ध के कारण है। इनके प्रभाव से मन और आत्मा की स्वस्थता नष्ट हो जाती है। इसी कारण शास्त्र मे इन्हे कर्मो का वीज कहा है। अतएव जो आत्मा का कल्याण करना चाहते है उन्हे राग-द्वेष को निरन्तर घटाने का ही प्रयत्न करना चाहिये। उन्हे अधिक से अधिक समभाव की वृद्धि करनी चाहिए।

१३

राग-भाव अनादि काल से आत्मा के साथ लगा हुआ है। इस राग की आग मे आत्मा झुलस रही है। राग ही केवलज्ञान, केवल-दर्शन और यथाख्यात चारित्र मे वाधक है। ज्योही राग-भाव निर्मूल हो जाता है त्योही आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग चारित्र का अधिकारी हो जाता है।

१४

भाइयो ! अगर आपको स्नेह ही करना है, तो परमात्मा से स्नेह करो। परमात्मा के प्रति प्रगाढ प्रीति करोगे तो सासारिक पदार्थो सम्वन्धी प्रीति हट जायगी और उससे आत्मा का उत्थान और कल्याण होगा। परमात्मा से प्रेम न करके जो लोग ससार की वस्तुओ से प्रेम करते है, वे अपने लिए नरक का द्वार खोलते है।

५.

विवेकवान् पुरुष किसी की निन्दा नही करते। वे सोचते है कि पराई निन्दा करने से हमे क्या लाभ है ? निन्दा करने से मुँह मीठा नही होता, सपदा नही मिलती, वडाई भी नही मिलती, कल्याण भी नही होता। यही नही, परनिन्दक समझदार लोगो मे हीन-दृष्टि से देखा जाता है और ज्ञानियो की दृष्टि मे व्यर्थ ही पाप का उपार्जन करता है।

६.

समझदार व्यक्ति नारद-प्रकृति लोगो को अपने पास नही फटकने देते। कदाचित् उनकी वात सुन लेते है तो उस पर ध्यान नही देते और सुनी-अनसुनी कर देते है अथवा सुनाने वाले से स्पष्ट कह देते है कि भाई, तुम अपना काम देखो। दूसरा मुझे गाली देता है तो देने दो। जव मेरे सामने देगा तो मै निपट लूँगा। इस प्रकार साफ उत्तर देने से भिडाने वाले का साहस टूट जाता है। वह फिर उसके सामने नही वोलता।

७

भाइयो! निन्दा करने से वचो। दूसरो की राख लेकर अपने मस्तक पर विखेर लेने से क्या लाभ है ? ससार मे गुणीजन वहुत है। उनके गुणो को देखो और प्रशसा करो। इससे आपको आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

८.

पाप की निन्दा करो, मगर पापी की निन्दा मत करो।

९.

साधु की भूल देखकर जो निन्दा करते है, हँसी करते है, उन्हे समझना चाहिए कि लाठी कैसी भी टूटी-फूटी क्यो न हो, मटके को तो वह फोड ही सकती है।

१०

आत्म-निन्दा करने से अपने दोषों के प्रति असन्तोष जागृत होता है और आत्मा की शुद्धि होती है। पर की निन्दा करने से आत्मा की मलिनता बढ़ती है। आत्मा का पतन होता है और लाभ कुछ होता नहीं। अतएव अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं तो पर निन्दा के पाप से दूर रहना चाहिये।

पाप

१.

परस्त्रीगामी लम्पट भी रावण के पुतले की दुर्दशा करने मे पीछे नही रहते। इसका कारण यही है कि पापी की आत्मा भी पाप से घृणा करती है। आत्मा का असली स्वभाव उसे पाप के प्रति घृणा कराना सिखलाता है।

२.

मनुष्य का जीवन एक चौराहा है। चौराहे पर प्रकाश-स्तम्भ लगा रहता है और उस प्रकाश मे चारो ओर जाने वाले रास्ते दिखाई देते है। इसी प्रकार मनुष्य-जीवन से चारो गतियो के लिए रास्ते जाते है। शास्त्र और सद्गुरु का प्रकाश इस चौराहे पर मौजूद है। चारो गतियो का मार्ग उस प्रकाश मे देखा जा सकता है। आप यह भी जान सकते है कि किस गति मे जाने से क्या हालत होगी? जिन्हे सुखमय हालत प्राप्त करनी है उन्हे देवगति और मनुष्यगति की राह पकडनी चाहिये, अर्थात् धर्म-कर्म करना और पापो से बचना चाहिए। पाप पहले भले लगते है पर अन्त मे बहुत बुरे साबित होते है।

३

भाइयो! पापी की आत्मा दुर्बल होती है। पाप ऐसा कीडा है कि वह मनुष्य के अन्तस्तल को कुतर-कुतर कर निर्बल और निःसत्व बना देता है। सच्चाई के सामने पाप क्षण भर नही ठहर सकता।

४.

इष्ट की प्राप्ति के लिए पाप का आचरण करना आम पाने के विचार मे बबूल की खेती करने के समान है।

५

पाप मनुष्य को अपनी ही निगाहो मे गिरा देता है। पाप मे एक

ऐसा विचित्र तीखापन होता है कि वह हृदय को काटता रहता है। पापी की आत्मा सदैव सशंक रहती है।

६

अन्तःकरण को निष्पाप बनाओगे तो निष्पाप बन जाओगे।

७

धर्म तथा पुण्य कमाना कठिन है पर पाप का उपार्जन करने में कुछ भी देर नहीं लगती। जोड़ने में देरी लगती है तोड़ने में क्या देर लगती है?

८

अज्ञानी पुरुष पाप-कर्म से तो बचने का प्रयत्न नहीं करता किन्तु पापकर्म के फल से दुःख से बचने का प्रयत्न करता है। किन्तु ज्ञानी सोचता है कि विपत्तियों से बचने का ठीक उपाय यही है कि विषवृक्ष को जड़ से ही उखाड़ दिया जाय। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। जिस वृक्ष से दुःखों के विषफल उत्पन्न होते हैं उस वृक्ष को ही उखाड़ देने में बुद्धिमत्ता है अर्थात् पापकर्म से उत्पन्न होने वाले दुःखों को नष्ट करने के लिए पापकर्मों से दूर रहना ही उचित है।

९

जो आगे जाने के लिए पीछे कदम उठाने वाला आदमी बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार धन ऐश्वर्य आदि सुख की सामग्री प्राप्त करने के लिए पाप का आचरण करने वाला व्यक्ति भी विचारवान् नहीं कहा जा सकता।

१०

तुम सुख पाने के लिए पापों का आचरण करते हो मगर ऐसा करके कदापि सफल मनोरथ नहीं हो सकते।

११

विषपान करके चिरजीवन की अभिलाषा करना घोर मूर्खता नहीं तो क्या है? इसी प्रकार पाप करके सुखी बनने की अभिलाषा भी मूर्खतापूर्ण ही कही जा सकती है।

१२

कल्पवृक्ष या उसके फलो की कामना से प्रेरित होकर जो बबूल बोता है, उसे क्या कहा जाय ? बबूल बोने से कल्पवृक्ष के फलो की प्राप्ति होना सभव नही है, इसी प्रकार पापमय आचरण करके पुण्य-फल की आशा रखना भी दुराशा-मात्र है ।

१३

जैसे नीम के वृक्ष मे आम के फल नही लग सकते । जैसे लाल मिर्च खाने से मुँह मीठा नही हो सकता, उसी प्रकार पाप करने से सुख नही मिल सकता ।

१४

कागज की नाव बना कर और उस पर सवार होकर अगर कोई समुद्र पार होना चाहता है तो उसे पागल के सिवाय और क्या कहा जा सकता है ? इसी प्रकार जो जुल्म करके, पाप करके फलना-फूलना चाहता है अर्थात् सुखी और सौभाग्यशाली बनना चाहता है, वह भी मूर्खो की कतार मे ही खडा होने योग्य है ।

१५

बीज बोने की तुम्हे स्वाधीनता प्राप्त है । किन्तु बीज बो देने के बाद अकुर इच्छानुसार पैदा नही किये जा सकते । तुम चाहो कि पापाचरण करके हम दु.ख के बीज बोएँ और उनसे सुख के अंकुर फूट निकले, यह सर्वथा असम्भव है । अपढ किसान भी समझता है कि चने के बीज से गेहूँ का पौधा नही उत्पन्न होता मगर तुम उसमे भी गये-बीते हो ।

१६

पाप का परिणाम तो किसी के लिए भी अच्छा नही होता । देखो रावण कितना प्रतापशाली और प्रचण्ड राजा था । उसकी नीयत बिगड गई । वह सीता जैसी आदर्श सती को हरण करके ले गया । [illegible] घोर पाप से उसका समस्त पुण्य क्षीण हो गया । बढिया-बढिया [illegible] चीजें डाल कर सीरा बनाया जाय । किन्तु अन्त में उसमे

प्रकार सुखी वनने के लिए पाप का आचरण करना भी मूर्खता है। यह उल्टा प्रयास है।

२३

निरर्थक बाते वना कर अपने भविष्य को कटकमय वनाना कहाँ की बुद्धिमत्ता है। प्रयोजन से पाप करने वाला कदाचित् क्षम्य हो सकता है किन्तु निष्प्रयोजन ही आत्मा को पाप के भार से लादने वाला कैसे क्षम्य समझा जा सकता है ?

२४

दही को मथने से मक्खन निकलता है—यह वात दुनिया जानती है और आप भी जानते है। पर क्या जान लेने मात्र से मक्खन निकल आता है ? नही, क्रिया किये विना, दही को मथे विना मक्खन नही निकलेगा। इसलिए हमारा कहना है कि पापो से वचो। पापो से वचे विना तुम्हे स्वर्ग और मोक्ष नही मिल सकता।

२५

दु ख से वचना हो तो सर्वज्ञ के उपदेशो पर चलो। पाप-पक मे आकठ निमग्न रहोगे और सुख भी चाहोगे तो ऐसा नही हो सकेगा।

२६

जो ब्राडी के नशे मे धुत्त हो जाता है, वह किसी की नही सुनता। इसी प्रकार जिसकी आत्मा पर पापो का गहरा नशा छा जाता है, वह ज्ञानी और परोपकारी पुरुष की भी वात नही सुनता। कदाचित सुनता है तो एक कान से सुनकर दूसरे कान से वाहर निकाल देता है।

२७

किसी कुत्ते को रोटी डालोगे तो वह भी तुम्हारा मुंह चाटने का साहस करेगा। नही डालोगे तो वह ऐसा साहस भी नही करेगा। इसी प्रकार झूठ वोलना, चोरी करना, परस्त्री-गमन करना, वेईमानी करना आदि कुत्ते हैं। इन्हे जीवन मे हिस्सा दिया तो ये मुंह चाटे ।। कैसे रहेंगे।

५८

जैसे रुई में लगी आग छिपी नहीं रह सकती, उसी प्रकार पाप छिपाये छिप नहीं सकते। छिपा राज बुरे कर्म का फल बहुत बुरा होता है।

५९

पाप मन में है धन में नहीं है। जीव को मोक्ष में जाते हुए धन नहीं रोक सकता और न तन ही रोक सकता है। किन्तु पापमय मन ही मुक्ति में रुकावट डालता है।

६०

पाप का आचरण न करने से क्या जीवन निर्वाह नहीं होता? पाप न करने वाले क्या भूखे रहते हैं? पाप करके सम्पत्ति इकट्ठी करना चाहते हो तो अपनी इस दुर्वासना का त्याग करो। सम्पत्ति परलोक में साथ नहीं जा सकती। यहाँ नहीं सूक्ष्म विचार करोगे तो ज्ञात होगा कि वह इस लोक में भी सुख नहीं दे सकती।

रात्रि भोजन

१.

भाइयो ! रात्रि मे भोजन करना वडा भारी पाप है। रात्रि मे भोजन करने वाले को क्या पता चलेगा कि भोजन मे, दाल मे कीडी है या जीरा है ? वह तो कीडियो को भी जीरा समझकर खा जायगा।

२

ज्ञानियो ने रात्रि भोजन को अंधा भोजन कहा है। सूर्यास्त होने के वाद स्पष्ट दिखाई नही देता। अतएव रात्रि भोजन वहुत बुरी चीज है। बुद्धिमान पुरुप कभी रात्रि मे भोजन नही करते। अरे खाने के लिए दिन ही वहुत है तव रात्रि मे भोजन करने से क्या फायदा है ?

३

हजम होने से पहले ही सो जाओगे तो खाना पचाने के लिए पेट की मशीन को वहुत ज्यादा मेहनत करनी पड़ेगी और इससे मशीन जल्दी कमजोर हो जायगी। जो लोग सूर्यास्त से पहले ही खा लेते है, उनके पेट की मशीन को विश्राम मिल जाता है। गहरी नीद आने के कारण वह स्वस्थ रहते हैं।

४.

रात्रि भोजन अप्राकृतिक है। देखो ! तोता रात्रि मे कुछ नही खाता है, कबूतर और यहाँ तक कि पक्षियो मे निकृष्ट समझा जाने वाला कौवा भी रात्रि मे चुगने नही जाता। तो क्या मनुष्य इनसे भी अधम है जो रात्रि मे भोजन करे ? रात्रि का भोजन अन्धा भोजन है। अनेक दोपो का जनक है।

५

रात्रि भोजन पापो और दोपो का घर है। रात्रि मे, अन्धेरे मे जो तो जीव-जन्तु भी खाये जा सकते हैं और यदि प्रकाश करो

धन-वैभव

१.

भाइयो ! इन अठारह पापो मे हिसा, असत्य, स्तेय और मैथुन की तरह परिग्रह भी महान् पाप है। इससे आत्मा का अध:पतन होता है वल्कि यो कहना चाहिए कि परिग्रह सव पापो का बाप है।

२

धन से धर्म नही होता वरन् धन के त्याग से धर्म होता है।

३

जैसे स्वच्छता के लिए पहले मैल लगाना और उसकी सफाई करना आवश्यक नही है, उसी प्रकार धर्म की आराधना के लिए पहले धन कमाना और फिर उसका त्याग करना आवश्यक नही है।

४.

जिसके शरीर पर मैल नही है वह नये सिरे से मैल नही चढने दे, यही उसकी स्वच्छता है। इसी प्रकार जिसके पास धन नही है वह धन कमाने की आकाक्षा न करे। धन के प्रति ममता और मूर्छा का भाव उत्पन्न न होने दे, इसी मे उसकी धर्मनिष्ठता है।

५

धर्म के लिहाज मे धन भी कीचड के समान है। धर्म साधना करने के लिए धन का परित्याग करना पडता है। ऐसी स्थिति मे जो धन के प्रति ममत्वहीन है वही सबसे अधिक विवेकशाली है। जो उपार्जित किये हुए धन का परित्याग करता है वह भी विवेकशाली गिना जायगा। किन्तु जो धर्म के लिए पहले धन कमाना चाहता है और फिर उसका त्याग करना चाहता है उसे बुद्धिमान किस प्रकार कहा जा सकता है। वह तो उल्टी गगा बहाना चाहता है।

तो हो, मगर धन मिल जाना चाहिए। तिजोरियाँ भर जानी चाहिए। जैसे समग्र जीवन धन के लिए समर्पित है। धन देवता के आगे अपनी आत्मा को बलि का बकरा बना डाला है। इस प्रकार धन के लिए लोग आत्मा का हनन कर रहे है और जानते है कि यह हमारे काम आने वाला नही। यह कितनी अद्‌भुत बात है।

१०.

हम फकीर शायद न समझ पाते हो तो, हे धन कुबेर! तू बता, तेरे बड़े-बडे धन के भडार तेरे लिए किस काम के है? क्या तू उस धन को खा सकता है? पहन सकता है? आखिर किस प्रयोजन से तू तिजोरियो पर तिजोरियाँ भरे जा रहा है? वस्तुतः इस प्रश्न का कोई सन्तोपजनक उत्तर नही दे सकता। शरीर की आवश्यकताएँ बहुत सीमित है। उनकी पूर्ति के लिए झूठ-कपट, अन्याय, अत्याचार, चोरी, डकैती, जुआ-सट्टा आदि करने की आवश्यकता नही है। वह तो प्रामाणिकता के साथ अल्पश्रम करने से भी पूरी हो सकती है। उनके लिए पाप का सेवन करना व्यर्थ है। दिन-रात हाय पैसा, हाय पैसा की धुन की आवश्यकता नही है।

११.

भाइयो! विचार तो करो कि पैसा-प्रधान मनोभावना से तुम्हारा सुख बढा है या घटा है? जीवन मे शाति का सचार हुआ है अथवा अशाति की आग ही सुलगती जा रही है? अरे! पैसा देव नही, दानव है, इससे तुम्हे सुख नही मिलेगा, बल्कि यह तुम्हारे सुख को छीन लेगा। मगर यह बात तुम्हारे गले कहाँ उतर रही है? आँखो देखते भी जो अनजान बना रहता है, उसको कोई क्या करे?

१२.

लक्ष्मी का वाहन जो उलूक है, सो अज्ञानान्धकार का प्रतीक है। जहाँ लक्ष्मी है अर्थात् धन है, वहाँ अज्ञान है, मूढ़ता है।

१३

धन के नाश के तो सैकड़ो कारण मौजूद है। चोर चुरा ले जाते है, डाकू लूट ले जाते हैं, बाढ बहा ले जाती है, आग नष्ट कर देती

है भाई-बन्धु छीन लेते हैं या दुर्व्यसन में पडकर उडा देते हैं। ऐसी नाशवान वस्तु का अभिमान कैसा? सच तो यह है कि अभिमान करने की तो बात ही दूर धन या अन्य सांसारिक पदार्थ तुम्हारे हैं ही नहीं। तुम चेतन हो धन आदि वस्तुएं जड हैं। भला जड पदार्थ चेतन के किस प्रकार हो सकते हैं?

१४

भाग्या! यह धन-दौलत और राज्यलक्ष्मी वेश्या के समान है। यह स्थिर वृत्ति वाली नहीं है। आज एक की बगल में खडी हो जाती है तो कल दूसरे की। इस पर विश्वास करना सिर्फ नादानी के सिवाय और कुछ भी नहीं है। यह आज तक किसी भी राजा महाराजा या सेठ-साहूकार की बनकर नहीं रही है।

१५

परोक्ष वस्तु में भ्रम होना सहन किया जा सकता है। मगर आँखों से दिखाई देने वाली वस्तु को भी उलटा समझना कहाँ तक उचित है? तुम हम और सभी प्रत्यक्ष देखते हैं कि कोई भी सम्पत्ति परभव में साथ नहीं जाती सिर्फ पाप और पुण्य ही साथ जाता है। फिर धन और सम्पत्ति के लिए पापों का उपार्जन करना क्या बुद्धिमत्ता है? नहीं यह अविवेक है! मूर्खता है!

१६

धन से पाप बदल कर पुण्य नहीं बनाया जा सकता। वह तो अपने स्वरूप में ही अपना फल देता है और देता रहेगा।

१७

सोना मनुष्य की मनुष्यता को नष्ट कर देता है। गरीब और अमीर के बीच फौलादी दीवार खड़ी करने वाला वस्तुओं में सोना भी मुख्य है। सोना मनुष्य को निर्दय बना देता है घमण्डी बना देता है और राक्षस बना देता है। आश्चर्य है कि फिर भी लोग इसे प्यार करते हैं और इसे पाकर अपने आप को धन्य समझते हैं।

१८.

जिस सम्पत्ति के लिए तुम रात-दिन एक कर रहे हो, अनीति और नीति की परवाह नही करते हो, धर्म और अधर्म का विचार नही करते, उस सम्पत्ति मे से क्या-क्या साथ लेकर जाओगे ? मित्रो ! आँखे खोलो। तुम्हारे पुरखा चले गये और वे कुछ भी साथ नही ले गये। अव क्या तुम साथ ले जा सकोगे ? नही, हर्गिज नही। सव कुछ यही पडा रह जायगा। आँख मिचते ही माल पराया हो जायगा। तुम भी इस वात को जानते हो और भली-भाँति जानते हो। फिर भी भ्रम मे पड़े हो ? आश्चर्य है कि फिर भी परलोक को सुधारने की तरफ ध्यान नही देते हो। अगर तुम हिन्दू हो तो लक्कडो मे जलाकर भस्म कर दिये जाओगे और यदि मुसलमान हो तो जमीन मे गड्ढा खोद कर दवा दिये जाओगे। वस किया हुआ पुण्य और पाप ही साथ जायगा।

१९.

जीवन सदा रहने वाला नही है और सम्पदा साथ जाने वाली नही है। शरीर की आवश्यकताएँ परिमित है फिर क्यो दुनिया भर की पूँजी अपनी तिजोरी मे वन्द करने के लिए पाप करते हो।

२०

जो लोग अपने जीवन का अधिक भाग धन कमाने मे व्यतीत कर चुके है, उन्हे निवृत्त हो जाना चाहिए। जिन्दगी के अन्तिम श्वास तक गधे की तरह लदे-लदे फिरना ठीक नही। दुनिया के धन्धे छोडो और परमात्मा की प्रीति से वँधे रहो। धर्मोपदेश सुनने का यही सर्वोत्तम सार है।

२१.

सम्पत्ति का रोग वडा ही भयानक होता है। अन्यान्य रोग तो प्राय. एक-एक ही विकार उत्पन्न करते है, मगर लक्ष्मी का रोग एक साथ अनेक रोगो को उत्पन्न कर देता है। जिसे धन की बीमारी हो जाती है, वह कानो से वहिरा हो जाता है, मुँह से गूंगा हो जाता है, आँखो से अन्धा हो जाता है, और उसकी तमाम इन्द्रियाँ नि[illegible] हो जाती है।

२२

धन के मद में उन्मत्त बना हुआ मनुष्य गरीबों से बात भी नहीं करता। उनसे बोलने में वह अपनी बेइज्जती समझता है। यही धनवान का गंगा होना समझना चाहिए। धनी आदमी कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के मार्ग को नहीं रखता नीति और अनीति का पथ उसे नहीं सूझता वह दीन दुखिया की तरफ दृष्टि भी नहीं डालता यही उसका अन्धापन है।

२३

सम्पत्ति की बीमारी मनुष्य को हृदयहीन बना देती है। सम्पत्ति शाली के पड़ौसी के बालक भूख में कराह रहे हों तो भी वह उनकी परवाह नहीं करता। उनकी दुःख-दर्द भरी आवाज उसके कानों तक नहीं पहुँचती। उसके चित्त पर उसका कुछ भी असर नहीं होता। यह बहिरापन नहीं है तो क्या है?

२४

जो लोग श्री-सम्पन्न होने पर भी भगवान के भक्त होते हैं उन्हें यह मपद रोग नहीं हो पाता। भक्ति का अमृत रसायन उनके रोगों को शमन करता रहता है। इस प्रकार लक्ष्मी के होते हुए भी जो लक्ष्मी के मद से रहित होते हैं वे इस रोग से बचे रहते हैं।

२५

संसार का समस्त वैभव यहीं रह जाता है। वह आज तक किसी के साथ गया नहीं है और जायगा भी नहीं। धर्म ही साथ जाने वाला है। ऐसी स्थिति में वैभव के चक्कर में पड़कर धर्म को विस्मरण कर देना उचित नहीं है। शाश्वत को त्याग कर अशाश्वत को अपनाने में बुद्धिमत्ता नहीं है। आत्मा की गुण सम्पत्ति ही उसका शाश्वत वैभव है, उसे प्राप्त करने का मार्ग साधुपन है।

२६

किसी के हक में बुरा मत करो। तुम्हारा किया तुम्हें ही भोगना ..। बुरे विचारों का और बुरे कार्यों का फल भी अच्छा नहीं हो

सकता। जिस धन-दौलत के लिए तुम पापमय विचार करते हो, वह आत्मा के साथ नही जायगी। वह पाप ही आत्मा के साथ जायगा और तुम्हे पीडा पहुँचायेगा। धन-सम्पत्ति और भोग-सामग्री तो चार दिन की चाँदनी और उसके बाद अँधेरी रात होगी।

२७.

तुम्हारी यह रईसी और सेठाई किसके सहारे खडी है? बेचारे गरीब और मजदूर दिन-रात एक करके तुम्हारी तिजोरियाँ भर रहे है। तुम्हारी रईसी उन्ही के बल पर और उन्ही की मेहनत पर टिकी हुई है। कभी कृतज्ञतापूर्वक उसका स्मरण करते हो? कभी उनके दु:ख मे भागीदार बनते हो? अपने सुख मे उन्हे हिस्सेदार बनाते हो? उनके प्रति कभी आत्मीयता का भाव आता है? अगर ऐसा नही होता तो समझ लो कि तुम्हारी सेठाई और रईसी लम्बे समय तक नही टिक सकेगी। तुम्हारी स्वार्थपरायणता ही तुम्हारी श्रीमताई को स्वाहा करने का कारण बनेगी। अभी समय है—गरीबो, मजदूरो और नौकरो की सुधि लो। उनके दु:खों को दूर करने के लिए हृदय मे उदारता लाओ। उनकी कमाई का उन्हे अच्छा हिस्सा दो। इससे उन्हे सन्तोष होगा और उनके सन्तोष से तुम सुखी बने रहोगे।

२८.

व्यापारी का आदर्श दूसरो को कष्ट पहुँचा कर अपनी तिजोरियाँ भरते रहना नही है। गरीबो को चूसना व्यापारी का कर्त्तव्य नही है। जनता के अभाव को दूर करने के लिए व्यापार की प्रथा चलाई गई थी। एक जगह कोई चीज आवश्यकता से अधिक होती है और दूसरी जगह इतनी कम होती है कि उसके अभाव मे जनता को भारी कष्ट भुगतना पडता है। ऐसी स्थिति मे व्यापारी एक जगह मे दूसरी जगह वस्तुएँ पहुँचाकर सब को सुविधा कर देता है और उसी मे से अपने निर्वाह के लिए उचित मुनाफा ले लेता है।

२९.

व्यापारी कान खोलकर सुन ले कि ब्लैक मार्केट एक प्रकार की चोरी है और इस तरीके मे अगर कमाई करना शीघ्र ही नहीं छोड़

िया जायगा तो उसका प्रतिक्रिया वडी ही भयकर हो सकती है। ब्लैक मार्केट करने वाले व्यापारी अपन भविष्य को भूल रह हैं। वे समाज मे आर्थिक क्रान्ति का आह्वान कर रहे हैं। कहना चाहिए कि आज अज्ञानवश पूजीपति ही पूजीवाद के विरुद्ध वातावरण का निर्माण कर रहे हैं।

३०

पूछो लोगा से कि पहले तुम्हार पास कितना पसा था और तुम्हारी क्या हालत थी? अब कितना गुना पसा है? मगर सन्ताप नही। चोर बाजार अब भी तयार है। कोई भी अनीति और अत्याचार करन स परहेज नही। पता नही कि उसका फल कितना कटुक भुगतना पडेगा।

३१

गरीबा के असन्ताप को दूर करन का तरीका क्या है—यह हमारे शास्त्र हजारो वष पहले ही बतला चुके है। श्रीमन्त अपना हृदय उदार बनावें त्यागशील बनें निधना के प्रति आन्तरिक स्नेह रखें, समय पर उनकी सहायता करें कोई भी व्यवहार ऐसा न करें जिसस उन्हें अपनी हीनता मालूम पडे सब प्रकार से उन्हे साता पहुँचाने का प्रयत्न करें और धन की ही तरह विद्या बुद्धि और श्रम का महत्त्व समझें तो बिगडती हुई परिस्थिति मे कुछ सुधार हो सकता है।

३२

अन्याय का पसा अव्वल तो सामने ही समाप्त हो जायगा कदा चित् रह गया तो तीसरी पीढ़ी म दिवालिया बना ही दगा। ईमान दारी का एक पसा भी मोहर के बराबर है और बईमानी की मोहर भी पसे क बराबर नही है।

३३

नीति का एक पसा भी मोहर के बराबर है और अनीति का भण्डार भी अनर्थों का भण्डार है।

३४.

अनीति करके कोई सुख नही पा सकता। अनीति द्वारा उपार्जन किया हुआ द्रव्य तो चला ही जाता है, साथ मे प्रतिष्ठा को भी ले जाता है, गाँठ की पूँजी को भी ले जाता है और कभी-कभी प्राणो का ग्राहक भी बन जाता है।

३५.

अनीति के सौ रुपयो से नीति का एक पैसा भी अधिक सुख, सन्तोप और शान्तिदायक होता है। नीति की सम्पत्ति आत्मा को सन्तोप प्रदान करती है, जबकि अनीति की कमाई आत्मा को सन्ताप पहुँचाती रहती है। नीति से अगर एक पैसा तुम्हारे पास आयेगा तो वह तुम्हारा होकर रहेगा। अनीति से आया हुआ विपुल द्रव्य भी तुम्हारा होकर नही रहेगा।

३६

दयालु पुरुप धन का अधिक लालच नही करेगा। वह सोचेगा कि संसार मे धन तो परिमित ही है। अगर मैं अपनी वास्तविक आवश्यकता से अधिक इकट्ठा कर लूँगा तो दूसरो को कमी पड जायगी। गरीबों को कष्ट उठाना पडेगा। मेरे पास निरर्थक पडा रहेगा और दूसरो के पास आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भी नही रहेगा।

३७.

जिस लोहे के छुरे से बैल काटा जाता है, उसकी निर्जीव चमडी से वह लोहा भी भस्म हो जाता है— यह बात भूलनी नही चाहिये। आज तुम समझो अथवा न समझो मगर एक दिन समझना पडेगा कि गरीब की हाय व्यर्थ नही जायगी। गरीबो की हाय मे वह आग है कि श्रीमंतो की बडी-बडी हवेलियाँ भी उससे भस्म हो जायेगी।

३८

आज आपके पास पहले से पैसा बढा ही है, घटा नही है। मगर देखना यह है कि आपकी उदारता उसी परिमाण मे बढी है अथवा नही। अगर आपकी उदारता नही बढी तो धन के बढने मे आपका

का हित हुआ ? धन के साथ आपकी ममता जुड़ गई इसका अर्थ यह हुआ कि आपका पाप बढ़ गया है। उस धन की सार-सँभार करने की चिन्ता बढ़ गई व्याकुलता बढ़ गई और आरम्भ-समारम्भ बढ़ गया। यह सब पाप का ही बढ़ना है। ऐसी सम्पत्ति से आपका कुछ भी हित नहीं होने वाला है, बल्कि अहित ही है।

३६

तू चाहता है मैं अधिक सम्पत्तिशाली होकर सुखी बन जाऊँगा। परन्तु यह तो देखले कि जिनके पास अधिक सम्पत्ति है वे क्या सुखी हैं ? नहीं वे भी तो सुखी नहीं हैं। वे भी तेरी ही तरह तृष्णा की आग में जल रहे हैं। ऐसी अवस्था में तू कैसे सुखी हो जायेगा ? सुख का असली साधन तो सन्तोष ही है। अतएव हे भव्य ! अगर तू वास्तव में ही सुखी बनना चाहता है तो सन्तोष धारण कर।

४०

धर्म साधना में धन की तृष्णा बहुत बाधक होती है। परन्तु कभी यह भी सोचते हो कि आखिर इतने धन का क्या करोगे ? क्या पाव भर अन्न के बदले बहुमूल्य मोती खाना चाहते हो ? अरे पाव भर अनाज थोड़ी-सी जगह और आवश्यक वस्त्र तुम्हें चाहिए और उसके बदले तुम दुनिया भर की दौलत को हथियाने के लिए आकाश-पाताल एक कर रहे हो ? सोचते क्यों नहीं कि यह सब वृथा है ! अपना यह उत्तम पावन इस लोक और विनश्वर सम्पत्ति के पीछे क्यों अकारथ खो रहे हो ? धन की मर्यादा करलो। मर्यादा कर लोगे तो सन्तोष आ जायगा। सन्तोष आ जायेगा तो व्याकुलता मिट जायेगी। निराकुलता का अपूर्व सुख प्राप्त होगा और तब भावना धर्म की ओर जायगी।

४१

तृष्णा तो एक तरह की अग्नि है जो धन-सम्पत्ति के इंधन से बुझती नहीं बढ़ती जाती है।

४२

सम्पत्ति चित्त में शान्ति का संचार नहीं करती बल्कि व्याकुलता को

आग ही सुलगाती है। ऐसी सम्पत्ति के लिए क्यो आत्मा का अहित करते हो ?

४३.

जिनके बाप-दादे गरीब थे, भरपेट रोटियाँ भी नही पाते थे, ऐसे लोग लखपति होकर भी भगवान का भजन नही करते ? पुद्गलो के लिए चिन्तामणि के सदृश मानव-जीवन को बर्बाद कर रहे है। कोई आदमी कौवा को उडाने के लिए हाथ का हीरा फेंक दे तो मूर्ख समझा जाता है मगर धन-दौलत के लिए जीवन को गँवा देना क्या उससे भी बडी मूर्खता नही है ?

४४

तुम गृहस्थ हो तो मैं नही कहता कि तुम पैसा मत कमाओ, किंतु इस प्रकार नैतिकता के विरुद्ध व्यवहार करके मत कमाओ ! पैसे के लिए अपना धर्म मत बेचो ! पैसा जीवन के लिए है, जीवन पैसे के लिए नही है। धन की तृष्णा से अन्धे होकर न्याय-अन्याय को मत भूलो ! जिस धन के लिए तुम धर्म को भूल रहे हो, वह साथ जाने वाला नही है। हाँ धनोपार्जन के लिए तुम जो पाप करोगे वह अवश्य ही तुम्हारे साथ जायगा और यह बाँधा हुआ पाप तुम्हे भव-भव मे दुःख देगा।

४५

जीवन और धन मे से जीवन ही महत्त्वपूर्ण वस्तु है। धन जीवन के लिए है, जीवन धन के लिए नही है। माना कि जीवन को सुखमय बनाने के लिए गृहस्थ अवस्था मे धन की जरूरत होती है, पर इसका अर्थ यह तो नही है कि तुम धन के लिए अपने सारे जीवन को और समस्त सद्गुणो को ही न्यौछावर कर दो।

४६.

चाहते हो कि हम धन-सम्पन्न बन जायें, पुत्र-पौत्र आदि परिवार वाले बने रहे, सब प्रकार की सुख-सामग्री हमे प्राप्त हो, मगर धर्म की उपेक्षा करते हो, तो यह कैसे हो सकता है ? नीम का रस पीकर मुँह मीठा करने की इच्छा किस प्रकार सफल हो सकती है ? तुम

धर्म का रक्षण और पालन करोगे तो धर्म तुम्हारा रक्षण और पालन करेगा। धर्म से ही सब सुखों की प्राप्ति होगी।

४७

धर्म की उपेक्षा करके धन की आराधना करना वैसा ही मूर्खता पूर्ण है जैसे किसी वृक्ष के मधुर फल पाने के लिए उसके मूल में पानी न सींच कर पत्तों पर पानी छिड़कना।

४८

भाई! समझ ले तेरे पास धन है और तू चाहे तो उसके द्वारा स्वर्ग भी खरीद सकता है और नरक भी खरीद सकता है, दोनों में से क्या चाहता है? स्वर्ग चाहता है तो धन को ताला में छिपाये रखने से काम नहीं चलेगा। उसे देना हाथों से खर्च करना होगा। स्वर्ण का मोह छुड़ाना होगा। गरीबों को दान देना पड़ेगा धर्म के कामों में व्यय करना होगा। यदि नरक खरीदना है तो तिजारियों में भर कर, जमीन में गाड़ दे। धन जमीन में गाड़ने के लिए जो गड्ढा बनाता है समझ ले कि नरक में जाने का रास्ता बना रहा है।

४६

भाग्या! पापी जीव मर जायगा, लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति छोड़ जायगा परन्तु उस सम्पत्ति के उपार्जन में जो पाप किए हैं उन्हें साथ अवश्य ले जायगा। उन पापों का फल भोगने के लिए वह नरक कुण्ड में गिरेगा। वहाँ सारी अकड़ निकल जायगी।

५०

जिस धन से देश जाति समाज और धर्म का भला न हुआ, वह धन वृथा है। उस धनवान का जीवन भी वृथा है। वह उस धन का मालिक नहीं गुलाम है। उसकी जिन्दगी किसी के काम नहीं आई और उसका धन भी किसी के काम नहीं आया। तब वह किस मत मत का है?

५१

वह बड़ा आदमी किस काम का जो हर्ष के अवसर पर स्वयं ही

खा-पी लेता है। स्वय ही विनोद कर लेता है और मौज उडा लेता है। सच्चा वडा आदमी वही है जो अपने हर्ष मे दूसरो को सम्मिलित करता है। जो सुख के समय मे दीन-दुखियो का स्मरण करता है।

५२.

आपका वडप्पन किस काम का है ? घोड़े की पूँछ वडी होती है पर वह अपनी ही मक्खियाँ उडाती है। अगर आपने अपने पडौसियो का भला नही किया तो आपके वडप्पन का क्या महत्त्व है ? जगल के पेड की तरह पैदा हुए, जिन्दा रहे ओर नष्ट हो गये, तो किस काम के ? आपने जीवन का क्या लाभ लिया ?

५३

अगर इस जन्म मे लक्ष्मी का सदुपयोग न करेगा तो फिर कब करेगा ? यह लक्ष्मी या तो तेरे जीते जी ही तुझे छोडकर चली जायगी अथवा किसी समय तू इसे छोडकर जायगा। जब यह निश्चित है, और इसमे तनिक भी सन्देह नही है तो फिर क्यो सोच-विचार करता है।

५४

धन का भण्डार भर लेने से भी धन्य नही होगा, प्रतिष्ठा और परिवार बढा लेने से भी जीवन सफल नही बनेगा। सुकृत करने मे ही जीवन की सार्थकता है।

५५

धन प्राप्त करने की सार्थकता इसी मे है कि वह परोपकार के काम मे आये। जो धन परोपकार के काम मे नही आता वह पुण्य का कारण न बनकर पाप का ही कारण बनता है। उससे आत्मा का पतन होता है।

५६

धनवानो को अनुचित आदर मिलने के कारण समाज मे धन की पूजा बढती जाती है और गुणो की प्रतिष्ठा घटती जाती है।

उसके समान कोई करोडपति नही है। आगे धन साथ नही चलेगा, धर्म ही चलेगा।

६३.

धनी जिस धन मे अपनी प्रतिष्ठा समझता है, जिसमे अपना गौरव मानता है समझदार लोग उससे जीवन का अध.पतन देखते है।

६४.

अज्ञानी मनुष्य जिसे अपने जीवन का सर्वस्व समझता है, जिस सम्पदा के लिए धर्म और नीति का भी त्याग करते संकोच नही करता, यहाँ तक कि मरने को भी तैयार हो जाता है, ज्ञानी उसी सम्पत्ति को तुच्छ और निस्सार समझते हैं। ऐसी सम्पत्ति का जो भी मूल्य है, वह केवल मिथ्या कल्पना के ही क्षेत्र मे है। वास्तविकता के क्षेत्र मे उसकी कोई कीमत नही है।

६५.

यदि आपकी मानसिक स्थिति ऐसी ऊँची हो गई है कि आप धन के लिए धर्म को नही त्याग सकते और धन आपको धूल के समान प्रतीत होने लगा है तो आप सम्यग्दृष्टि है, शुक्ल पक्षी है।

६६.

गरीव अगर अपनी गरीवी मे सतोप मानकर चलता हे और जिस किसी उपाय से धनवान् वनने की लालसा नही रखता तो वह धनवान् से तनिक भी कम भाग्यशाली नही हे।

६७.

प्राचीन काल मे वीरता का सत्कार होता था, आज धन का सत्कार होता है? देश का यह पतन क्या सामान्य पतन है?

६८.

आज धन के सम्बन्ध मे प्रतिस्पर्द्धा होने के कारण और धन को ही प्रतिष्ठा मिलती देखकर लोग विवाह-शादी जैसे अवसरों पर भी धन को ही महत्त्व देते हैं। कन्या का पिता चाहता है कि मुझे लखपति जँवाई मिले और लड़के का पिता चाहता है कि मुझे कोई ऐसा

सम्बन्धी मिले जो धन से मेरा घर भर दे ? इस तरह दोनों की नजर धन पर ही होती है। इससे बेचारे गरीबों को कितनी परेशानी होती है, इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। योग्य से योग्य लडके कुंवारे फिरते हैं और धनवान बूढे शादियाँ करके अपने बुढ़ापे को सजाते हैं। जिस देश की और जिस जाति की ऐसी दशा हो उसका उत्थान कैसे होगा ?

६६

माता पिता को सोचना चाहिए कि एकमात्र धन ही किसी के जीवन को सुखी और उन्नत नहीं बना सकता। शिक्षा, सुसंस्कार, धार्मिकता और नैतिकता आदि सद्गुण जिसमें विद्यमान हों विवेकवान् माता पिता उसी वर को पसन्द करते हैं। वे यह ध्यान में रखते हैं कि हम धन के साथ अपनी कन्या का विवाह नहीं करना है बल्कि मनुष्य के साथ करना है और इसीलिए वे धन से किसी को योग्य नहीं समझ लेते बल्कि सद्गुणों से ही योग्यता की जाँच करते हैं।

७०

बाप से बेटे को जो धन मिलता है उसकी क्या कीमत है ? वह धन तो उलटा अनर्थ का कारण होता है। वह ज्यादा हो गया और धर्म धन न हुआ तो मनुष्य क्या करेगा। मस्ती में पड़ा रहेगा और काण्डी पीएगा और अण्ड घूमेगा ? इस प्रकार पौद्गलिक धन आत्मा को नरक में ले जाने का ही साधन है। इसके विपरीत है सद्गुरु के द्वारा प्रदान किया हुआ धर्मधन जो इस लोक को भी सुधारता है और परलोक को भी सुधारता है।

७१

भाइयो ! धन के भण्डार या भरी हुई तिजोरियाँ छोड़ जाने से तुम स्मरणीय नहीं बनोगे। उस धन को पाकर तुम्हारे उत्तराधिकारी अगर अनाचारी हो गये तो लोग तुम्हें भी कोसेंगे। इसी प्रकार सात मंजिला महल बना लेने से भी तुम गणना के योग्य नहीं बन सकोगे। भूकम्प का एक ही धक्का उसे भूमिसात् बना देगा। नहीं तो काल

उसे धरती मे मिला देगा। पुत्र-पौत्र आदि का वडा परिवार भी तुम्हारा जीवन सार्थक नही वना सकता। ससार की कोई वस्तु तुम्हारा सच्चा स्मारक नही वन सकती। अगर तुम चाहते हो कि ससार तुम्हारा नाम ले, तुम स्मरणीय समझे जाओ तो शुद्ध चेतना प्राप्त करो। शुद्ध चेतना अर्थात् विवेक या सम्यग्दर्शन पाकर तुम्हारी शक्ति तुम्हे समीचीन पथ की ओर ले जायगी और आखिर गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाओगे।

७२.

रेहट की घड़ियाँ पानी से भर जाती है और फिर थोडी-सी देर मे ही खाली हो जाती है। खाली होकर वह फिर भर जाती है। इस प्रकार भरने और खाली होने का क्रम चालू ही रहता है। धन की भी यही दशा है। वह कभी आता है और कभी चला भी जाता है, चला जाता है तो आ भी जाता है। आज जो दरिद्र है वह कल ही संपत्तिशाली वन सकता है और आज जो सम्पत्तिशाली है वही कल दाने-दाने के लिए मुँहताज हो सकता है। अतएव धनवानो का कर्त्तव्य है कि जव उनकी दशा अनुकूल हो तव वे धन का दुरुपयोग न करे। गरीवो को सताएँ नही, वल्कि अपने धन से उनकी सहायता करे।

७३.

कोई भोला मनुष्य आपके ऊपर विश्वास करता है। आप चाहे तो सहज ही उसे ठग सकते है। मगर आप उसे ठगना उचित नही समझते और सोचते है कि—'अरे आत्मा' क्या सोना-चाँदी आदि सम्पत्ति तुझे छाती पर रखकर ले जानी है? इस दुनिया की चीजे तो इसी दुनिया मे रह जायेंगी, फूटी कौड़ी भी साथ जाने वाली नही है। फिर वृथा ही इस सम्पत्ति के लिए क्यो पाप कर्म करता है? क्यो अपनी आत्मा को पाप मे कलुषित वनाता है? जव पाप कर्मों का उदय होगा तव पाप से उपार्जित की हुई सम्पत्ति सुख प्रदान नही कर सकेगी, वह उलटा दुःख का ही कारण वनेगी।' ऐसा सोचने वाला अपनी दया करता है।

७४

पुण्य का उपाजन करोगे तो आगामी जीवन मे भी सुख पाओगे। छल-कपट से धन कमाओगे तो पाप ही पल्ले पडेगा। धन साथ नही जायगा पाप गले पड जायेगा। अत निष्कपट बनो, सरल बनो!

७५

धन-सम्पत्ति को साथ ले जाने का एक ही उपाय है और वह यह कि उसका दान कर दो उसे परोपकार म लगा दो खरान कर दो।

७६

कन्य लोग अपने धन की रक्षा करने म बहुत कुशल होते हैं। मगर खेद है कि व यह नही समझते कि उनका वास्तविक धन क्या है? रुपया-पैसा महल आदि को तुमने धन समझा है परन्तु वह तुम्हारा सच्चा धन नही है। वह पौद्गलिक धन तुम चेतन का धन कैसे हो सकता है? तुम्हारा असली धन चरित्र है। अत तुम्हे चरित्र रूपी धन की रक्षा करनी चाहिये।

७७

भाइयो! कोई भी व्यक्ति लाखो और करोडो की सम्पत्ति इकट्ठी कर सकता है। किन्तु पुण्य के बिना वह भोग नही सकता। खेत म किसान अटवा खडा कर देता है। वह न स्वय खाता है और न पशु आदि को खाने देता है। इसी प्रकार कृपण जन न खुद खा सकता है और न दूसरो को खाने देता है। वह धन का पहरेदार मात्र है। उसकी रखवाली करना ही उसका काम है।

७८

कुछ लोग माला जपते है और उसमे भावना करते हैं—हे भगवान सारे गाँव के ग्राहक मेरी ही दुकान पर आ जाएँ। भगवान ग्राहको को घेर घेर तेरे घर लाएगे! सूने भगवान को अपना नौकर समझ रखा है! अरे सभी सब ग्राहक तेरी दुकानपर आ जायेंगे तो दूसरो के बाल-बच्चे क्या खायेंगे?

७६.

लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए पुण्य की आवश्यकता है। पुण्य का उपार्जन भगवान की स्तुति और भक्ति करने से होता है। जो भगवान की भक्ति करेगा, लक्ष्मी उसकी दासी बन जाएगी। जैसे परछाई से विमुख होकर आप चलते है तो परछाई आपका पीछा करती है, उसी प्रकार आप लक्ष्मी से विमुख होकर भगवद्-भक्ति करेंगे तो लक्ष्मी आपका पीछा करेगी। इसके विरुद्ध जैसे परछाई को पकड़ने के लिए दौड़ने वाला व्यक्ति कभी अपनी परछाई को नही पा सकता, उसी प्रकार लक्ष्मी-लक्ष्मी करने वाला और उसके पीछे-पीछे मारा-मारा फिरने वाला पुरुष लक्ष्मी नही पा सकता।

८०

आखिर सभी को एक दिन मरना है फिर धन के लिए यह अनीति क्यो की जानी चाहिए ?

८१

आत्मा के स्वाभाविक गुण ज्ञान-दर्शन आदि भाव लक्ष्मी आत्मिक सम्पत्ति है। वह सदैव आत्मा मे रहती है। उसे बाहर से लाने की आवश्यकता नही पडती। उसे प्राप्त करने के लिए सिर्फ इतना ही करना पडता है कि आत्मा पर पडे पर्दों को प्रयत्न करके हटा दिया जाय। यह सम्पत्ति एकान्त सुख देने वाली है और सदैव सुख देने वाली है। परलोक मे भी वह साथ देती है। वह अनन्त और अक्षय आनन्द प्रदान करने वाली है।

विषय-भोग

१

संसार मे जितने भी अनर्थ हो रहे है उन सबके मूल मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे, स्पष्ट या अस्पष्ट रूप मे भोगो की अभिलाषा ही है। सांसारिक भोग ही सब अनर्थों की खान हैं।

२

विषय भोग और उनके साधनो की आकाक्षा ही असल मे दुःख है और उस आकांक्षा का त्याग सुख है। ज्यो-ज्यो जीवन निवृत्तिमय बनता जायगा त्यो-त्यो सुख की वृद्धि होगी। शान्ति निराकुलता में है व्याकुलता मे नही है।

३

कुत्ता समझता है कि वह जिस हड्डी को चूस रहा है उसमे से खून आ रहा है। उस बेचारे को क्या पता कि जिस खून को वह हड्डी मे समझ रहा है वह तो उसका अपना ही है? ऐसी भाँति विषयासक्त जीव भोगो मे सुख की कल्पना करता है जबकि सुख आत्मा मे ही है। मुर्दे के मुह में षटरस भोजन डाल दो क्या वह उसका रसास्वादन करके सुख प्राप्त कर सकेगा? कदापि नही।

४

असल बात यह है कि अधिकांश लोग वास्तविक सुख के रूप को ही नहीं समझते हैं। जैसे कुत्ता प्राप्त हड्डी को चाबता है। हड्डी को चबाने से उसके मसूड़ों मे से रुधिर निकलता है और वह उस रुधिर को हड्डी मे से निकलने वाला समझ कर चाटता और आनन्द मनाता है। और वह यह समझता है कि यह स्वाद हड्डी मे से आ रहा है। इसी प्रकार अज्ञानी जीव समझ रहे हैं कि सुख भोगो मे है। परन्तु उनकी धारणा मिथ्या है सुख पुद्गल का गुण ही नहीं है। वह तो

आत्मा का गुण है और आत्मा मे ही रहता है। आत्मा के सुख गुण के विकार को—सुखाभास को लोग पुद्गलजनित सुख समझते है।

५.

भाइयो! आँखो मे खुजली चलने पर मनुष्य खुजा लेता है और कोई मनाई करता है तो भी नही मानता। उस समय खुजलाने मे ही उसे सुख मिलता है। किन्तु बाद मे जब जलन होती है तो पछताता है। इसी प्रकार यह भोग थोडी देर मजा देते है, किन्तु बाद मे बुरी तरह पछताना पडता है।

६.

कलाकन्द मे सखिया डाल दिया गया हो तो खाने वाले को पहले तो आनन्द आता है, किन्तु थोडी ही देर बाद सारे शरीर मे ऐंठन आरम्भ होती है और प्राणो से हाथ धोना पडता है। यही बात इन्द्रियो के भोगो के सम्बन्ध मे है।

७

भोगो मे उतना ही सुख है जितना तलवार की धार पर लगे हुए शहद को जीभ से चाटने से होता है। क्षणभर मिठास मालूम होती है। परन्तु जीभ कटने के कारण लम्बे समय तक दु ख उठाना पडता है। भोग भोगने से भी इस लोक मे दु ख ही दु ख होते है।

८

विष और विषयो मे अन्तर है तो यही कि विष एक बार मारता है और विषय अनेक बार मारते है। कामभोगो की अधिक विपाक्तता प्रकट करने के लिए शास्त्रकार कहते है कि काम सर्प के समान है। जैसे सर्प भयकर होता है और उससे दूर रहने मे ही कल्याण है, इसी प्रकार विषय भी आत्मा के लिए भयकर है और उनसे दूर रहने मे ही कल्याण है।

९.

जैसे मन भर का पत्थर गले मे बाँधकर डुबकी लगाने वाला पुरुष तल भाग मे जाकर अपने प्राण गँवाता है, उसी प्रकार विषय-भोगो

की गठरी अपने सिर पर लादने वाला मनुष्य पाताल लोक की ओर ही प्रयाण करता है।

१०

यह जीव भोगों को नहीं भोगता है परन्तु भोग ही जीव को भोग लेते हैं। भोगों के लिए अपना जीवन निछावर करने वाले भोग नहीं भोगते वास्तव में भोग ही उनके जीवन को भोगकर समाप्त कर देते हैं। जीव सोचता है कि मैं पाँच वर्ष में हजारपति से लखपति बन गया मगर धन कहता है मैंने इसके अनमोल जीवन के पाँच वर्ष खत्म कर दिये।

११

संसार में जितने भी संयोग हैं वे सब दुःख उत्पन्न करने वाले हैं। थोड़े से समय का संसार का सुख बहुत लम्बे समय तक दुःख देता है और वह सुख भी दुःखों से मिश्रित है जैसे जहर मिला हुआ अमृत! संसार के सुख को ज्ञानीजन इसीलिए सुख नहीं मानते।

१२

विषय भोगों से मिलने वाला सुख वास्तव में सुख नहीं सुखाभास है। सच्चा सुख तो तृप्ति में है और विषय भोगों का सर्वथा त्याग करके एकान्त निराकुल अवस्था में ही तृप्ति हो सकती है। अतएव भोगजन्य सुख को सुख समझना कोरा भ्रम है, दुःखों को निमन्त्रण देना है।

१३

जीव का स्वरूप अनन्त आनन्द है। मगर जीव को अपने स्वरूप का वास्तविक बोध नहीं है। अतएव वह विषयजन्य आनन्द को ही अपना ध्येय मान लेता है और उसी को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वास्तव में विषय सुख सुख नहीं सुखाभास है। वह सुख सरीखा प्रतीत होता है। मोही जीव इसी सुखाभास के प्रलोभन में फँस कर अपने जीवन को वृथा गँवा देता है।

१४

भाग्यो! संसार के यह सब सुख दुःख के जनक हैं। जो सुख

दु:खों के जनक हो, वे वास्तव मे दु:ख रूप ही है। जितने भी इन्द्रियो के विषय हैं, सब का परिणाम एक मात्र दु:ख है।

१५.

जो जीव विषय-भोगों मे आसक्त होकर भविष्य की—परलोक की उपेक्षा करते है, वे मृत्यु के समय और उसके पश्चात् घोर सकट मे पड़ते है।

१६.

यह भोग रोग के भण्डार है। चेतना को मूढ बना देने वाले, आत्मा को पतित बनाने वाले, जीव को अभिशापमय बना देने वाले और समस्त आपदाओं को लाने वाले है। भोगो मे आसक्त हुआ जीव अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है। वह अपनी आत्मा की ओर झाँक कर भी नही देख सकता।

१७.

भोग चेतना को जडवत् बना देते है। भोगो का सयोग भी दु ख-दायी है और उनका वियोग होने पर भी शोक और पश्चात्ताप होता है। भोगो की बदौलत भयानक व्याधियाँ चैट जाती है। विश्वास न हो तो अस्पताल मे जाकर पूछ आओ। वहाँ कितने ही लोग भोग के फलस्वरूप नरक-सी यन्त्रणाएँ भोगते है। कई लोग प्रकट रूप से कुछ कह नही सकते, मगर एकान्त मे बैठ कर रोते है।

१८

आग मे घी डाला जायगा तो वह शान्त नही होगी। उसकी ज्वालाएँ अधिकाधिक प्रचण्ड ही होती जायेगी, इसी प्रकार भोग भोगने से अन्त करण मे तृप्ति नही हो सकती, शान्ति नही हो सकती, बल्कि अशान्ति की ही वृद्धि होगी। फिर शान्ति पाने की इच्छा मे अशान्ति की राह पर क्यो चलना चाहिए ? धूप से घबरा कर आग की लपटो मे कूदना अगर मूर्खता है तो सच्चे सुख को प्राप्त करने के लिए भोगो के मार्ग पर चलना भी मूर्खता ही है।

१९.

भोग का स्वभाव ही अतृप्ति असन्तोष बढाना है अतएव उनसे

सब कसे आ सकता है। कोई सोचे कि मैं जब सम्राट या बादशाह बन जाऊंगा तो खूब भोग भोगकर तृप्ति संपादित कर लूगा, किन्तु अरे भोले जीव बादशाह के दिल से तो पूछ देख कि उसका क्या हाल है। उसे सन्तुष्टि मिल सकी है या नहीं ?

२०

ससार का एसा कौन-सा पुद्गल है जिसका उपभोग तूने नहीं किया है ? विश्व के कण-कण को अनन्त-अनन्त बार अनन्त अनन्त रूप म तूने भोग लिया है। अब क्या शेष रह गया भोगने को ? यदि अब तक तुझे तृप्ति नही हुई तो क्या अब इस जीवन म भोगने से तृप्ति हो जायगी ? रे अज्ञानी जीव ! अपने मोह का त्याग कर। क्यों मन का नचाया नाचता है ? क्यो इन्द्रियो का गुलाम बन कर अपने भविष्य को सकटमय बनाता है ? यह विषय क्षणभर विकृत आनन्द देंगे तो चिरकाल पर्यन्त घोर यातनाओं के कारण बन जायेंगे।

२१

भोगोपभोगों मे सुख होता तो विवेकशील पुरुष इनका त्याग करके एकान्त वनवास के कष्टों को क्यो स्वेच्छा पूर्वक सहन करते ? वस्तुत किसी भी पौद्गलिक पदार्थ म सुख नहीं है और न वह आत्मा को सुखी बना सकता है क्योंकि सुख आत्मा का ही स्वाभाविक धर्म है। जब आत्मा पर पदार्थों से विमुख होकर अपनी ओर उन्मुख होता है और अपने ही सहज स्वरूप मे रमण करता है, तब आत्मा का सुख गुण आविर्भूत हो जाता है।

२२

आज किसी अंधेरे कमरे म बद कर दिया जाय और दरवाजे बद हो तो पाँच मिनिट भी नहीं रहा जाता मगर नौ मास तक गर्भवास कैसे किया ? आज उन सब दुखों को भूल गये हो इसी से विषय वासना में फँस कर अपने जीवन का सर्वस्व समझ रहे हो परन्तु याद रखना यह पुन-पुन गर्भ म उत्पन्न होने का मार्ग है। जिस रास्ते से गये हो वह बहुत दुखों से परिपूर्ण है। उसी पर फिर क्यो जाते हो ?

२३.

भाइयो ! विषय-वासना का दु ख थोड़ा मत समझो । इसके पीछे आज हजारो-लाखो नही, करोडो जीवन बर्बाद हो रहे है । बडे-बडे प्रतिभाशाली लोग इस चक्कर मे पड़कर मूर्ख बन जाते है । कितने ही उदीयमान नक्षत्रो का विषय-वासना ने उदित होने से पहले ही अन्त कर दिया है । विषय-वासना वह पिशाचिनी है कि न जाने कितनो को अपना भक्ष्य बना चुकी है ।

२४.

विषयो मे हलाहल विष भरा है । ज्यादा सिनेमा देखेगा तो आँखो की रोशनी मन्द हो जायगी और ज्यादा मनोज्ञ गध सूँघेगा तो नाक बद हो जायगी । ज्यादा मीठा खाएगा तो बीमारियाँ घर दबाएँगी । अधिक स्पर्श सुख को अनुभव करेगा तो निर्बल, निस्तेज और मुर्दार होकर अकाल मे ही काल के गाल मे चला जायगा । इसलिए ज्ञान की लगाम लगाकर इन घोड़ो को रोक, ऐसा किये बिना ये रुकने वाले नही है ।

२५

ज्ञानी पुरुष की आत्मा अन्दर ही अन्दर पुकारने लगती है कि हलाहल विष का भक्षण करना कदाचित् अच्छा हो सकता है क्योकि उससे उसी एक भव का नाश होता है, जिसमे विष-भक्षण किया गया है । परन्तु यह भोगों का विष तो अनन्त भवो को बिगाडने वाला है । इसके सेवन से असख्य और अनन्त बार मौत का शिकार होना पडता है । अतएव यह भोग-विष हलाहल विष की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक सहारक है ।

२६.

भोगोपभोगो का मार्ग बड़ा ही चक्करदार है, विषम है और नरक एव निगोद तक जाने वाला है । इस मार्ग पर आत्मा अनादि काल से चल रहा है, मगर उसे न शान्ति मिली है, न तृप्ति मिली है, न सुख मिला है, न संतोष मिला है ! इतना ही नही, उलटी अशान्ति, अतृप्ति, दुःख एवं असन्तोष की ही प्राप्ति हुई है । इन भोगोपभोगो ने

आत्मा के प्रभुत्व को लुप्त कर दिया है ऐश्वर्य को मिटा दिया है। अनन्त आनन्द जो आत्मा का नैसर्गिक गुण है इन्ही भोगों के कारण से आत्मा को नहीं प्राप्त हो रहा है। संसारी जीव इनकी तृष्णा में पड़ कर अपने ज्योतिर्मय अनन्त प्रकाशमय-स्वरूप को भूल गया है।

२७

जब तक आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव से अनभिज्ञ है तभी तक वह बाह्य पदार्थों में सुख समझता है। जब आत्मा के असीम स्वाभाविक सुख का अक्षय खजाना उसे नजर आता है तो बाह्य सुख उसे उपहासास्पद जान पड़ता है। उसे भोगना उसे नादान छोकरों का खेल-सा जान पड़ता है।

२८

राग और द्वेष रूपी विकारों को जीतना ही साधना है। जितने जितने अंशों में इन विकारों पर विजय प्राप्त होती जाती है उतने ही उतने अंशों में साधना पकती जाती है और जब पूरी तरह पक जाती है अर्थात् पूर्णता पर पहुँच जाती है तो पूर्ण समभाव प्रकाशित हो जाता है।

२९

मनुष्य जब आत्मा के परम चिन्मय स्वरूप को पहचान लेता है तब उसे स्वभावतः विषयों से विरक्ति हो जाती है। अतएव विषय-वासना से बचने के लिए आत्मज्ञान प्राप्त करना ही सच्चा उपाय है। निरन्तर भावना और अभ्यास से ही विषयों की वासना नष्ट की जा सकती है।

३०

जब कोई मनुष्य जान लेता है कि यह विषधर सर्प है तो क्या उससे प्रेम करता है? उसके समीप भी खड़ा रह सकता है? कदापि नहीं। सर्प का भान होते ही वह दूर भाग खड़ा होता है। यही सच्चा जानना है। इसी प्रकार जिसने संसार के भोगोपभोगों का असली स्वरूप समझ लिया है वह किस प्रकार उन्हें ग्रहण कर सकता है।

३१

भोगलोलुप लोग बाद मे कितना ही पश्चात्ताप क्यों न करे, अपने कर्मो का फल भुगते बिना छुटकारा नही पा सकते। अतएव हे मनुष्य ! तूने अन्य सब प्राणियो से विशिष्ट बुद्धि पाई है, तुझे विवेक भी प्राप्त है, तू अपने भविष्य के विषय मे विचार कर। सोच-समझकर कदम उठा। फूँक-फूँक कर चल। आँखें रहते अन्धा क्यो बनता है ? जान बूझकर क्यो आग मे पड़ता है ?

३२.

भाइयो ! ससार मे बन्धन तो अनेक है किन्तु विषय-भोग के बन्धन के समान और कोई बन्धन नही है। जिसने इस बन्धन को तोड कर फेक दिया है, समझ लो उसने सभी बन्धनों को तोड फेकने की तैयारी कर ली है। अन्य बन्धनों से मुक्ति पाना उसके लिए सरल हो जाता है। अतएव अगर आत्मा का परम कल्याण चाहते हो, तो विषय-वासना की जड को उखाडकर फेकने का प्रयत्न करो।

३३.

भोग का रोग बडा व्यापक है। इसमे उडती चिडियाँ भी फँस जाती है। अतएव भोग के रोग से बचने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये और कभी चित्त को गृद्ध नही होने देना चाहिए।

३४.

पापो से बचने का सबसे उत्तम उपाय अपनी इन्द्रियो पर काबू करना है। जैसे कछुआ अपने अगो और उपागो को सकुचित कर लेता है तो उसके ऊपर शत्रु का प्रहार सफल नही होता इसी प्रकार जो मनुष्य अपनी इन्द्रियो को वश मे कर लेता है, उस पर पापो का जोर नही चलता। जो कछुए की भाँति इन्द्रियो को गोपन करके रखता है, अन्त करण में बुरे विचार नही आने देता और दूसरो का दिल दुखाने वाली भाषा का भी प्रयोग नही करता, वह आत्मा को मोक्ष मे ले जायगा।

३५.

इन्द्रियों पर काबू रखने का अर्थ यह नही है कि कानो से सुनना

बन्द कर लो आँखों से देखना बन्द कर दो आँखें फोड़ लो या उन पर पट्टी बाँधे फिरो नाक से सूँघना बन्द कर दो, जीभ से स्वाद लेना छोड़ दो और स्पर्शनेन्द्रिय से किसी भी चीज को छूना त्याग दो। नहीं शास्त्रकारों का आशय यह नहीं है। ऐसा करने से जीवन निर्वाह नहीं हो सकता। इन्द्रियों पर काबू रखने का अर्थ यह है कि मनोज्ञ अर्थात रुचिकर समझे जाने वाले पदार्थों पर राग मत करो और अमनोज्ञ अर्थात अरुचिकर समझी जाने वाली वस्तुओं पर द्वेष भाव धारण मत करो।

३६

विषय परित्याग का अर्थ यह नहीं है कि आप किसी भी वस्तु का स्पर्श न करें किसी चीज को जीभ से न छूने दें नाक बन्द कर रखें आँखों पर पट्टी बाँध कर रहें और कानों से कोई भी शब्द न सुनें। विषयों के परित्याग का अर्थ यह है कि मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष न किया जाय। प्रत्येक अवस्था में समभाव में रमण करना और भले-बुरे सभी द्रव्यों में विषम भाव धारण न करना, यही विषय प्रमाद के त्याग का अर्थ है।

३७

नदी में आया हुआ वेग बाढ़ का रूप धारण करके अनेक अनर्थ उत्पन्न कर देता है। मगर चतुर इञ्जीनियर बाँध बना कर और नहरें निकाल कर जब उस वेग को शान्त कर देते हैं या दूसरी तरफ मोड़ देते हैं तो वही लाभदायक बन जाता है। यही बात यौवन के प्रबल वेग के विषय में भी समझो। विवेकवान व्यक्ति यौवन के प्रबल वेग की दिशा बदल देते हैं। भोगोपभोगों की दिशा से हटाकर उसे आत्म कल्याण की दिशा में ले आते हैं। तब वह अकल्याण के बदले सावों पर कल्याण का कारण बन जाता है।

३८

याद रखो रेती का लड्डू बना कर दीवार पर मारोगे तो रेती चिपकेगी नहीं किन्तु किसी मिट्टी का लड्डू वहीं चिपक कर रह जाएगा। तुम्हारे चित्त में भोगों की लिप्सा होगी तो चौरासी के

चक्कर मे पड़े रहोगे और भोगो के प्रति रूक्षवृत्ति होगी तो चक्कर मे नही पडोगे ।

३९.

ज्ञानी पुरुषो को पौद्गलिक सुख फीके और निस्सार प्रतीत होते है । उनकी रुचि उनको भोगने की नही होती । यद्यपि वह गृहस्थावास मे रहता है और सासारिक कार्य भी करता है, फिर भी उनमे निमग्न नही होता, लिप्त नही होता—जल मे कमल की भाँति अलिप्त रह कर ही वह दुनियादारी का व्यवहार करता है ।

४०.

इन्द्रियो के विषय इन्द्र के समान आत्मा को क्रीत दास बनाने वाले है ।

४१.

ससर्ग से वासना की वृद्धि होती है ।

४२.

वासनाएँ बढाने से बढती और घटाने से घटती है । भोग भोगने से तृप्ति हो जायगी, यह कल्पना विपरीत है । भोग भोगने से अतृप्ति ही बढती है, कभी तृप्ति नही होती । तृप्ति होती तो कभी की हो गई होती । अनन्त जन्मो मे जो तृप्ति नही हुई, वह अब कुछ वर्षो मे कैसे हो जायगी ?

४३.

इन्द्रिय विजय का मार्ग सम्पत्ति का मार्ग है । अर्थात् यदि तू अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर लेता है तो तुझे इसी लोक मे शाति, सन्तोष और निराकुलता रूप परम सम्पत्ति प्राप्त होती है और परलोक मे दिव्य सुख की प्राप्ति होगी ।

४४

ससार का समस्त विषय जनित सुख परावलम्बी, तुच्छ और अनुपादेय है । साथ ही क्षणिक भी है । स्वेच्छापूर्वक उसका परित्याग

करते परमात्मा का भजन करने से वचनागोचर आनन्द प्राप्त होता है। उसके फलस्वरूप मोक्ष का अमर सुख मिलता है।

४५

लोहे के ऊपर कितना ही वजनदार पत्थर पटको लोहा फलता नहीं लेकिन उसी को आग में रख दिया जाय तो गलकर पानी-पानी हो जाता है, इसी प्रकार मजबूत से मजबूत मन वाले भी खराब निमित्त मिलने पर खराब हो जाते हैं। अतएव जो मन का निग्रह करना चाहते हैं, उन्हें प्रतिकूल संयोगों से सदैव बचते रहना चाहिए।

४६

लोग प्रेम के नाम पर बहुत भ्रम में हैं। वे समझते हैं कि विषय वासना ही प्रेम है। किसी भी छोरी-छोरी को घर में डाल लेते हैं कि प्रेम हो गया। परन्तु कहाँ प्रेम की सात्विकता और पवित्रता और कहाँ कामना की गन्दगी! शुद्ध, सहज एवं सात्विक स्नेह अगर सुधा के समान है तो विषयानुराग विष के समान है। दोनों में प्रकाश और अंधकार के समान अन्तर है।

४७

जब तक दुविधा है तब तक पूर्ण आत्म निष्ठा नहीं हो सकती। संसार के सुख भी चाहो और मोक्ष की कामना भी करो तो यह नहीं बन सकता।

४८

कामना मात्र त्याज्य है। चाहे वह इहलौकिक हो अथवा पारलौकिक। कामना वह विष है जो धर्माचरण के अमृत को भी विषाक्त बना देता है। अतएव उसका त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है।

कर्म-फल

१.

कार्मण वर्गणा के पुद्गल द्रव्यकर्म कहलाते है, और राग-द्वेष आदि जीव के कषाय-भाव भावकर्म कहलाते है। इन दोनों मे कार्य-कारण भाव है। द्रव्यकर्म जब उदय मे आते है तो उनके निमित्त से राग-द्वेप आदि भावकर्म उत्पन्न होते है और जब भावकर्म उत्पन्न होते है तो नये कार्मण-वर्गणा के पुद्गल (द्रव्य-कर्म) आत्मा के साथ बध जाते है। अविच्छिन्न रूप से यह प्रभाव चलता आ रहा है।

२.

द्रव्यकर्मो से भावकर्मो की उत्पत्ति होती है और भावकर्मो से द्रव्यकर्म बँधते है। जैसे मुर्गी मे अडा होता है और अडा से मुर्गी होती है, अथवा बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज उत्पन्न है, उसी प्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्म मे भी परस्पर कार्य-कारण भाव है।

३.

समान साधन होने पर भी किसी को सफलता और किसी को असफलता मिलती है, कोई लाभ और कोई हानि उठाता है, इन सब का कारण क्या है? बाहर से तो सब एक-से दिखाई देते है फिर भी कार्य मे भिन्नता है तो कोई अदृश्य कारण होना चाहिये। वह अदृश्य कारण पूर्वोपार्जित कर्म ही है। आत्मा पुनर्जन्म न धारण करता हो तो पूर्वोपार्जित कर्म कैसे फल दे सकते है?

४.

बीमार कहता है अमुक औपध का सेवन करने से ज्वर चला गया किन्तु औषध ने भीतर जाकर किस प्रकार मे ज्वर मे लडाई की और क्या काम किया यह बात दुनिया को मालूम नही होती। फिर भी वह यह काम करती ही है। इसी प्रकार मनुष्य या अन्य कोई भी प्राणी जब पाप कर्म करता है तो यह नही मालूम होता है कि पाप

कर्म किस प्रकार आत्मा के स्वाभाविक गुणों को आच्छादित करते हैं? वह यह भी नहीं जान पाता कि कब कितने कर्मों का बंध हो गया है परन्तु कर्म औषध की भाँति धीरे धीरे अपने आप कार्य करते हैं। तुम चाहे दिन भर के अपने विचारों का पता न लगा सको मगर कर्मों को सब पता है। तुम जानो या न जानो कर्म तो लेखा लेंगे और राई राई का मिला लेंगे।

५

कई लोग कहते हैं—परलोक ढकोसला है। हम परलोक नहीं मानते। मैं ऐसे लोगों से कहना चाहता हूँ कि तुम्हारे दिल में जो यह विचार उत्पन्न हुआ है सो प्रबल पाप का परिणाम है। तुम्हारा हित इसी में है कि शीघ्र से शीघ्र इस मिथ्या विचार को दूर कर दो। क्योंकि परलोक है और तुम्हारे न मानने से मिट नहीं सकता। पागल कहता है—सरकार किस चिड़िया का नाम है हम नहीं जानते। मगर जब वह उत्पात मचाता है तो पागलखाने में बन्द कर दिया जाता है और कोड़ों की मार मारकर उसकी अक्ल दुरुस्त की जाती है। जब उसकी अक्ल ठिकाने आती है तो वह मान लेता है कि सरकार है। यही बात तुम्हारे सम्बन्ध में होगी।

६

कर्म यद्यपि जड़ हैं तथापि चेतना का ससंग पाकर वे उनमें फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जैसे अफीम में मस्ती पैदा कर देने की शक्ति है शराब में पागल बना देने की शक्ति है दूध में पुष्टि की शक्ति है वैसे ही कर्मों में शुभ-अशुभ फल देने की शक्ति है।

७

जैसे नदी के प्रवाह में कोई भी जल बिन्दु एक जगह स्थिर नहीं रहता तथापि प्रवाह स्थिर है इसी प्रकार कर्मों का प्रवाह अनादि है। पुराने कर्म स्थिति का परिपाक होने पर अपना अनुभव-फल देकर अलग हो जाते हैं और नये कर्म बँधते रहते हैं। अतएव कर्मों की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चल रही है। कोई भी एक कर्म अनादि काल से नहीं है सिर्फ कर्म प्रवाह अनादिकालीन है।

८

जैसे कोई व्यक्ति किसी से सौ रुपये उधार ले जाता है और पचास चुका कर फिर डेढ सौ ले जाता है। फिर कुछ देता है और फिर कुछ ले जाता है। इस प्रकार पुराना ऋण चुकाता चलता है और नया ले आता है और अपना खाता चालू रखता है इसी तरह जीव नए कर्म उपार्जन करता जाता है और पुराने भोगता जाता है।

९.

भाइयो ! पुण्य और पाप की शक्तियाँ ससार मे वडी जवर्दस्त शक्तियाँ है। मकान वदल सकते हो, वस्त्र वदल सकते हो, आभूपण भी चाहो तो वदल सकते हो, किन्तु पुण्य और पाप को नही वदल सकते। उनके फल अनिवार्य और अमिट है।

१०.

पूर्व जन्म के सस्कार अवश्य ही आत्मा मे सचित रहते है और वर्तमान जीवन वहुत कुछ उन्ही सस्कारो से प्रभावित एव सचालित होता है।

११.

फोनोग्राफ वाजे की चूडी मे राग भरा हुआ है। किन्तु वह यो अनायास नही निकलता। वाजे मे चावी भरी जाती है, सुई लगाई जाती है। तव उसमे से वैसी ही आवाज निकलती है जैसी गाने वाले ने गाई थी। चूडी मे वह आवाज जमा न होती तो सुई लगाने पर भी वह कैसे निकलती। इसी प्रकार अपने भीतर भी पहले जन्म की और उससे भी पहले जन्म की अनेक घटनाओ के सस्कार जमा है। जैसे-जैसे निमित्त मिलते है उसी प्रकार उनका स्मरण आता है।

१२.

जैसे वीज और वृक्ष की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है, उसी प्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्म की परम्परा भी अनादिकाल से चली आ रही है। अगर किसी वीज को जला दिया जाय तो अनादि-काल से चली आने वाली परम्परा खत्म हो जाती है। [illegible]

कर्मों की परम्परा को भी तपस्या आदि की आग में भस्म किया जा सकता है।

१३

जैसे रोटी का एक कौर खाया जाता है तो वह पेट में जाकर रस, रक्त, माँस, अस्थि मज्जा वीर्य आदि के रूप में परिणत होता है, उसी प्रकार आप जो हिंसा करते हैं झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, दूसरों का अहित सोचते हैं परस्त्री की तरफ बुरी नीयत से ताकते हैं क्रोध मान माया लोभ करते हैं तो इन सबसे सात या आठ कर्मों का बंध तो अवश्य ही होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे आपकी समझ में न आने पर भी भोजन से रस रक्त माँस बनते हैं। किसी के न समझने के कारण कर्मों का बंध रुक नहीं सकता।

१४

जैसे किसी किसी दवा का प्रभाव तीन वर्ष तक रहता है अमुक शराब का नशा अमुक समय तक रहता है इसी प्रकार कर्मों का प्रभाव भी भिन्न भिन्न समय तक रहता है।

१५

जीव अपने किये कर्मों के फलस्वरूप ही नाना प्रकार की दु खमय योनियों में भटका है और भटकता है। या किसी राजा यहाँ तक कि इन्द्र की भी शक्ति नहीं कि वह किसी को दुर्गति में भेज सके। न कोई किसी को सुगति दे सकता है और न दुर्गति दे सकता है। अपने अपने कर्म ही जीवों को सुगति-दुर्गति के पात्र बनाते हैं।

१६

भाइयो ! तुम्हें परलोक की यात्रा करनी है। आप जहाँ जाना चाहें वहीं जा सकते हैं। इसके लिए कोई रोक-टोक नहीं है। मगर तीसरे दर्जे का टिकिट लेकर अगर दूसरे या पहले दर्जे में बैठना चाहेंगे तो नहीं बैठ सकेंगे। रेल की यात्रा में कदाचित् पोल चल जाती है मगर परलोक की यात्रा में पोल नहीं चल सकती। वहाँ तो जिस दर्जे का टिकिट खरीदेंगे उसी दर्जे में जाना ही पड़ेगा। अतएव अगर आपकी इच्छा प्रथम या द्वितीय दर्जे में जाने की हो तो

आपको पहले ही ध्यान देना चाहिए। पहले ही उसका मूल्य चुकाना चाहिए। वह मूल्य क्या है ? रुपयो और पैसो मे वह मूल्य नही चुकाया जाता। वह दान, त्याग, तप, व्रत, संयम, नियम आदि के रूप मे चुकाया जाता है। निश्चित समझो, तनिक भी सदेह मत रक्खो कि जैसा करोगे वैसा भरोगे।

१७.

कर्मो के आगे वड़े-वड़े वलवान भी दुर्वल वन जाते है। उनके आगे किसी की नही चलती। कर्म क्षणभर में राजा को रक और रक को राजा वना देते है। वास्तव मे कर्मो की गति वडी विचित्र है। इन कर्मो ने महान् से महान् पुरुपो के साथ भी रियायत नही की। रामचन्द्र जैसे मर्यादा पुरुप को सताया, भगवान ऋपभ देव से भी वदला लिया और महावीर स्वामी को भी कष्ट पहुँचाया। जव ऐसे लोकोत्तर महापुरुप भी क्रूरता से नही वच सकते तो साधारण मनुष्य की तो वात ही क्या है ?

१८.

किसी भी तीर्थकर, अवतार, पैगम्वर की ताकत नही कि वह किये हुए कर्मो का फल न भोगे। जो मिर्च खायेगा उसके मुँह मे जलन हुए विना नही रहेगी। कोई शराव पी ले और चाहे कि नशा न आवे, यह कभी हो सकता है ? भाई इस विपय मे किसी की भी नही चलती है। कोई कहे कि यह वड़े आदमी है इन्हे गुनाह नही लगेंगे, परन्तु गुनाह उसको तो क्या उसके वाप को भी नही छोड़ने वाले है। जहर अपना काम करेगा और अमृत अपना काम करेगा। चाहे भैरोजी हो या वालाजी हो, पीर हो या और कोई हो, किसी की भी ताकत नही कि गुनाह करके कह सके कि मैं उसका फल नही भोगूंगा। कर्मो के आगे न शनिजी की चलती है, न सूरजजी की चलती है।

१९.

कोई असाधारण व्यक्ति हो या साधारण आदमी हो, भले ही तीर्थंकर ही क्यो न हो, यदि उसने पहले अशुभ कर्म उपार्जन किये है तो उन्हे भोगना ही पडता है। 'समरथ को नहिं दोस गुसाईं' की वात

कर्मों के आगे नही चल सकती। अच्छे कम करोगे, अच्छा फल पाओगे बुरे कम करोगे बुरा फल मिलेगा। कम करना तुम्हारी इच्छा पर निभर है मगर फल भोगना इच्छा पर निभर नहो है। शराब पीना या न पीना मनुष्य की मर्जी पर है मगर जो पी लेगा उसका मतवाला होना या न होना उसकी इच्छा पर निभर नही है। उसकी इच्छा न होने पर भी उसे मतवाला होना पडेगा। इसलिए मैं बार बार कहता हूँ कि खाली हाथ मत जाना।

जीवन निर्माणकारी साहित्य

अवश्य पढ़िये

कविरत्न श्री अशोक मुनि जी का साहित्य

प्रेरक साहित्य

- इनसे सीखे
- महकती मानवता
- दिवाकर-रश्मियाँ

साधना-साहित्य

- साधना-सग्रह
- जिन स्तुति
- नवकार चालीसा

संगीत-साहित्य

- सगीत-सुधा
- सगीत-सरोज
- सगीत-सीकर
- सगीत-सुपमा
- सगीत-सम्मेलन
- सगीत-सग्रह
- संगीत-सुमन
- सगीत-संचय